Con. 3. IX.31.49
320

अंक 9
संख्या 31

सत्यमेव जयते

शनिवार,
10 सितम्बर
सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान सभा

के

वाद-विवाद

की

सरकारी रिपोर्ट

(हिन्दी संस्करण)

विषय-सूची

पृष्ठ

संविधान का मसौदा—*(जारी)*

[अनुच्छेद 24 पर विचार] 1857-1972

भारतीय संविधान सभा

शनिवार, 10 सितम्बर, सन् 1949 ई.

भारतीय संविधान-सभा कांस्टीट्यूशन हाल, नई दिल्ली, में प्रातः 9 बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में समवेत हुई।

संविधान का मसौदा—*जारी*

अनुच्छेद 24

***अध्यक्षः** इस समय हम अनुच्छेद 24 को लेंगे और हम संशोधन संख्या 369 से आरम्भ करेंगे। माननीय सदस्यों पर मैं इस बात का जोर डालना चाहता हूं। कि इस अनुच्छेद पर हमें आज वाद-विवाद समाप्त कर देना चाहिये, क्योंकि सोमवार और मंगलवार के लिये हमने भाषा सम्बन्धी एक अन्य विषय नियत कर दिया है।

इस संशोधन पर मेरे पास लगभग 97 संशोधन आ चुके हैं। उनमें से बहुत से एक दूसरे से मिलते हैं और कुछ आपस में समान हैं। मैं आशा करता हूं कि सदस्यगण अपने संशोधनों को पेश करने का आग्रह करते समय इस बात का ध्यान रखेंगे जिससे कि विभिन्न सदस्यों द्वारा अपने अपने संशोधन पेश करते समय हमारे समक्ष वे ही तर्क न दुहराये जायें। सबसे पहला संशोधन जिसे हम लेंगे वह संशोधन संख्या 369 है।

***सेठ गोविन्द दास** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, क्या मैं यह समझूं कि यदि इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद एक बजे तक समाप्त नहीं हो पाता है तो फिर उसे दोपहर बाद भी जारी किया जायेगा जिससे कि हमें सोम और मंगल भाषा सम्बन्धी प्रश्न के लिये मिल सकें?

***अध्यक्षः** इस पर हम सोमवार को विचार करेंगे। यदि आवश्यक हुआ। तो आज हम दोपहर बाद सत्र रखेंगे।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं।

"कि अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जायेः—

'24. (1) No person shall be deprived of his property save by authority of law.

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

Compulsory acquisition of property.

(2) No property, movable or immovable, including any interest in, or in any company owning, any commercial or industrial undertaking shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition, unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined.

(3) No such law as is referred to in clause (2) of this article made by the Legislature of a State shall have effect unless such law having been reserved for the consideration of the President has received his assent.

(4) If any Bill pending before the Legislature of a State at the commencement of this Constitution has, after it has been passed by such Legislature, received the assent of the President, the law so assented to shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.

(5) Save as provided in the next succeeding clause, nothing in clause (2) of this article shall affect—

(a) the provisions of any existing law, or

(b) the provisions of any law which the State may hereafter make for the purpose of imposing or levying any tax or penalty or for the promotion of public health or the prevention of danger to life or property.

(6) Any law of a State enacted, not more than one year before the commencement of this Constitution, may within three months from such commencement be submitted by the Governor of the State to the President for his certification; and thereupon if the President by public notification so certifies, it shall not be called in

question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article or sub-section (2) of section 299 of the Government of India Act, 1935.' "

[24. (1) कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी सम्पत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। सम्पत्ति का अनिवार्य अर्जन।

(2) कोई स्थावर और जंगम सम्पत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है।

(3) राज्य के विधान-मंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि ऐसी विधि को, राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने के पश्चात् उसकी अनुमति न मिल गई हो।

(4) यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर किसी राज्य के विधान-मंडल के सामने किसी लम्बित विधेयक को ऐसे विधान-मंडल द्वारा पार किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो इस प्रकार अनुमति विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।

(5) आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त खंड (2) की किसी बात से–

(क) किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, अथवा

(ख) एतत्पश्चात् राज्य जो कोई विधि किसी कर या अर्थ दंड के आरोपण या उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिये अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या सम्पत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये उसके उपबन्धों पर, प्रभाव नहीं होगा।

(6) राज्य की कोई विधि, जो इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष से अनधिक पहले अधिनियमित हुई हो ऐसे प्रारम्भ से तीन महीने के अन्दर उस राज्य के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष उसके प्रमाणन के लिये रखी जा सकेगी, तथा ऐसा होने पर यदि लोक अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति ऐसा प्रमाणन देता है तो किसी न्यायालय

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

में उस पर उस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के अथवा भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 की उपधारा (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।]

श्रीमान, इस सभा में इस संविधान के कई अनुच्छेदों पर पर्याप्त समय तक वाद-विवाद हुआ है। ऐसे और कई अनुच्छेद होने के बारे में मुझे संदेह है जिन पर इतना अधिक वाद-विवाद हुआ हो जितना इस वर्तमान अनुच्छेद पर जिसे मैंने पेश किया है। इस वाद-विवाद में कई महान विधि विशारदों ने भाग लिया है। चाहे वाद-विवाद निजी रूप में हुआ हो तथा किसी अन्य स्थान पर हुआ हो—और यह स्वाभाविक ही है कि उन्होंने इस विषय पर बहुत अधिक प्रकाश डाला है—वास्तव में इतना अधिक प्रकाश कि टकराते हुए प्रकाश के किरण पुंजों से कुछ अंधकार सा हो गया है। परन्तु जो प्रश्न हमारे समक्ष हैं, वे वास्तव में बड़े साधारण हैं।

***श्री एच.वी. कामत** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, माननीय प्रधान मंत्री का भाषण इस ओर सुनाई नहीं दे रहा है।

***श्री जसपतराय कपूर:** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): वे जो कुछ कहते हैं उसका हम एक-एक शब्द सुनना चाहते हैं।

***माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू:** श्रीमान, मैं कह रहा था कि इस सभा में नहीं वरन् बाहर परस्पर सदस्यों में इस अनुच्छेद पर जो महान वाद-विवाद हुआ है उसके होते हुए भी जो प्रश्न इसमें अन्तर्ग्रस्त हैं वे उस विवाद की तुलना में सरल हैं। यह सच है कि इन प्रश्नों पर दो दृष्टिकोण हैं—वे दो दृष्टिकोण हैं संपत्ति पर व्यक्तिगत अधिकार और उस संपत्ति में संप्रदाय का हित अथवा संप्रदाय का अधिकार। यह आवश्यक नहीं है कि इन दोनों में परस्पर विरोध हो, कभी-कभी ये दोनों एक हो जाते हैं और यदि आप चाहें तो कभी-कभी इन में कुछ मामूली सा विरोध भी हो जाता है। यह संशोधन जो मैंने पेश किया है उसमें इस विरोध से बचने या उसे दूर करने का प्रयत्न किया गया है और इन दोनों व्यक्तिगत अधिकार और साम्प्रदायिक अधिकार को पूर्णतया मानने का भी प्रयत्न किया गया है।

सर्वप्रथम हमें यह स्पष्ट समझ लेना चाहिये कि जहां तक इस संविधान का सम्बन्ध है, बिना प्रतिकार के अधिकार च्युत करने का कोई प्रश्न नहीं है। यदि लोक प्रयोग के लिये संपत्ति अपेक्षित है तो यह एक सुस्थापित विधि है कि राज्य द्वारा वह अर्जित की जानी चाहिये और यदि आवश्यक हो तो दबाव डाल कर अर्जन कर लेना चाहिये और प्रतिकर देना चाहिये और उस विधि में प्रतिकर पर विचार करने की रीति निर्धारित है। साधारणतया ऐसे अर्जुन के सम्बन्ध में जिनको छोटी-छोटी संपत्तियों का अर्जन कहा जा सकता है और नगर इत्यादि के सुधार के लिये यदि आप चाहें तो तुलना में उसे बड़ी संपत्ति का अर्जन भी कह सकते हैं। विधि स्पष्ट रूप में निर्धारित कर दी गई है। परन्तु आज सम्प्रदाय को समाज सुधार और समाज विकास इत्यादि की बड़ी-बड़ी योजनायें अधिकाधिक संख्या में लेनी होंगी जिन पर छोटे-छोटे भूमि के टुकड़े या इमारतों के व्यक्तिगत अर्जन के

दृष्टिकोण से विचार नहीं किया जा सकता है। कठिनाइयां उत्पन्न होती ही हैं, परन्तु अन्य प्रकार की कठिनाई के अतिरिक्त समय का भी प्रश्न है। यह एक ऐसा विधान है जिसे सम्प्रदाय, अपने चुने हुए प्रतिनिधियों के रूप में राज्य की उन्नति और क्षेम के लिये बहुत आवश्यक समझता है और यह एक ऐसा विधान है जिसका प्रभाव करोड़ों पर पड़ता है। यह स्पष्ट है कि इस विधान को आप बहुत काल के लिये न्यायालयों में लगातार मुकदमेबाजी पर नहीं छोड़ सकते हैं। अन्यथा करोड़ों लोगों के भविष्य पर प्रभाव पड़ेगा और राज्य रूपी विशाल भवन की जड़ें तक हिल जायेंगी; अतः हमें इन बातों को दृष्टि में रखना पड़ा। यदि हमें संपत्ति पर अधिकार करना है; यदि राज्य की यही इच्छा है तो हमें यह देखना पड़ेगा कि उचित तथा न्यायपूर्ण प्रतिकर दिया जाये, क्योंकि हम उचित तथा न्यायपूर्ण प्रतिकर के आधार पर अग्रसर हुए हैं। परन्तु जब हम उसके औचित्य पर विचार करते हैं तो हमें यह सदैव स्मरण रखना पड़ेगा कि औचित्य केवल व्यक्ति पर ही लागू नहीं है वरन् सम्प्रदाय कर भी है। कोई व्यक्ति सम्प्रदाय के अधिकारों का पूर्णतया अतिक्रमण नहीं कर सकता है और यदि बहुत ही आवश्यक तथा महत्वपूर्ण कारण नहीं है, तो किसी संप्रदाय को व्यक्ति के अधिकारों में ठेस लगाना तथा उन पर आक्रमण करना नहीं चाहिये।

इस सबका किस प्रकार संतुलन किया जाये? कुछ सीमा तक आप वैध साधनों द्वारा इसका संतुलन कर सकते हैं, परन्तु संतुलन करने वाला प्राधिकारी देश का केवल सम्पूर्ण प्रभुत्व सम्पन्न विधान-मंडल ही हो सकता है जो अपने समक्ष लौकिक, राजनैतिक तथा अन्य प्रकार की उन सब बातों को रख सकता है जो इस विषय में उत्पन्न होती हैं। यदि आप इस अनुच्छेद को पढ़ने की कृपा करेंगे तो आपको इसमें विचार का एक क्रम मिलेगा और यह अनुच्छेद उन विभिन्न बातों को निर्दिष्ट करता है और मैं समझता हूं कि एक न्यायोचित रूप में उनको निर्दिष्ट करता है। यह सच है कि कुछ माननीय सदस्य इस अनुच्छेद की आलोचना करेंगे कदाचित् कुछ आच्छादन होने के प्रति, कदाचित् कुछ सदस्य यह समझें कि इधर-उधर किसी शब्द या पद में स्पष्टता का अभाव है। कुछ हद तक ऐसा हो ही जाता है और विशेषकर जबकि आप बहुत से विचारों, दृष्टिकोणों और बातों को एक साथ मिलाते हैं और उनको एक या कुछ पदों में रहते हैं।

इस अनुच्छेद का मसौदा जिसे प्रस्थापित करने का मुझे गौरव मिला है, वह बहुत अधिक परामर्श का परिणाम है और वास्तव में यह इस प्रश्न पर विभिन्न दृष्टिकोणों को एक साथ मिलाने और उनमें समझौता करने के प्रयत्न का परिणाम है। मैं समझता हूं कि यह प्रयत्न बहुत कुछ अंश में सफल हुआ है। शायद यह प्रत्येक व्यक्ति की इच्छाओं के अनुकूल न हो जो उसके एक भाग पर दूसरे भाग की अपेक्षा अधिक जोर डालना चाहें, परन्तु मैं समझता हूं कि यह समझौता ठीक है और इसमें केवल व्यक्ति के ही प्रति नहीं वरन् सम्प्रदाय के प्रति भी न्याय किया गया है।

इस अनुच्छेद के प्रथम खंड में यह आधारभूत सिद्धान्त निर्धारित किया गया है कि विधि के प्राधिकार के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से किसी व्यक्ति को उसकी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। दूसरे खंड में कहा गया है कि उस

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

विधि में सम्पत्ति के लिये प्रतिकर की व्यवस्था होनी चाहिये और या तो वह विधि प्रतिकर की राशि नियत करे या उन सिद्धान्तों का उल्लेख करे जिनके अधीन या जिस रीति से वह प्रतिकर निश्चित किया जायेगा। विधि में यह व्यवस्था होनी चाहिये। संसद को यह कहना चाहिये। इस कार्य में न्यायपालिका के बीच में आने का कोई निर्देश नहीं है। इस बात पर बहुत विचार किया गया है और इस पर बहुत वाद-विवाद हुआ है कि न्यायपालिका का दखल कहां होता है। महान विधि विशारदों ने हमें बताया है कि सामान्यतया यह कहा जा सकता है कि इस खंड की ठीक-ठीक रचना होने पर न्यायपालिका का न तो दखल होना चाहिये और न दखल होता है। संसद स्वयं प्रतिकर निश्चित करती है या उस प्रतिकर के सिद्धान्त निश्चित करती है और उन पर सिवाय इस एक कारण के आधार पर आपत्ति नहीं होनी चाहिये कि जब यह समझा जाये कि उस विधि का पूर्ण दुरुपयोग किया गया है और जहां कि वास्तव में संविधान के साथ धोखा हुआ है। न्यायपालिका का दखल इस बात के देने में होता ही है कि संविधान के साथ धोखा हुआ है या नहीं। परन्तु सामान्यतया यह मानना पड़ता है कि राष्ट्र के समस्त सम्प्रदाय का प्रतिनिधान करने वाली कोई संसद अपने ही संविधान के साथ कभी धोखा नहीं करेगी और व्यक्ति के प्रति तथा सम्प्रदाय के भी प्रति न्याय करने के लिये बहुत उत्सुक रहेगी।

अन्य खंडों के बारे में मुझे बहुत कम कहने की आवश्यकता है सिवाय इसके कि खंड (4) उन विधेयकों के सम्बन्ध में है जो इस समय राज्य के विधान-मंडलों में लम्बित हैं। सभा को यह विदित होगा कि ऐसे विधेयक लम्बित हैं। इन उपक्रमों के प्रति किसी शंका को मिटाने के लिये उसमें यह कहा गया है कि जैसे ही राष्ट्रपति उस विधि पर अनुमति दे देते हैं उस अधिनियम के उपबन्धों पर न्यायालय में आपत्ति नहीं की जानी चाहिये। इसके पूर्व यह भी कहा जा चुका है कि वह विषय राष्ट्रपति के पास भेजा जायेगा। यदि आप चाहें तो यह एक प्रकार की रुकावट है यह देखने के लिये कि जल्दी में विधान-मंडल ने कोई ऐसा काम तो नहीं कर दिया है जो उसे नहीं करना चाहिये। यदि ऐसा है तो निस्सन्देह राष्ट्रपति उसकी ओर उनका ध्यान आकर्षित करेगा और संसद के विचार-विमर्श के लिये ऐसे परिवर्तनों का सुझाव देगा जैसे वह उचित समझे।

अन्त में कुछ ऐसे रक्षात्मक खंड हैं जिनके बारे में मुझे बहुत अधिक नहीं कहना है। खंड (6) में पुनः ऐसी कोई विधि निर्दिष्ट है जो गत वर्ष पार कर दी जा चुकी है या इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष पूर्व। उसमें कहा गया है कि यदि राष्ट्रपति प्रमाणन कर देता है तो अन्य कोई आपत्ति नहीं उठानी चाहिये। इस अनुच्छेद को पढ़ते हुए मुझे यह आश्चर्यजनक प्रतीत होता है कि इस पर जो हमने इतना अधिक वाद-विवाद किया था वह यहां नहीं वरन् अन्यत्र ही हुआ। यह वाद-विवाद होना ही था कदाचित् इस अनुच्छेद पर नहीं तो शायद अन्य मतभेदों पर जो सदस्यों के मन में है और मेरा विश्वास है बहुत से बाहर के लोगों के मन में भी है।

हम एक महान संक्रान्ति के युग में होकर गुजर रहे हैं। वास्तव में इस बात को बार-बार कहा जाता है। परन्तु पुरानी बातों को दुहराना ही पड़ता है और उनको

याद रखना पड़ता है, वरना उनके भूल जाने से हम अपने आप को कठिनाइयों और संकटों में डाल देंगे। जब हम एक महान संक्रान्ति काल में से गुजरते हैं तो अनेक प्रणालियों में—यहां तक कि विधि की प्रणाली में भी—परिवर्तन हो जाता है। जो विचार हमें आधारभूत प्रतीत होते हैं उनमें परिवर्तन हो जाता है। और मैं सभा का ध्यान इसी संपत्ति संबंधी विचारधारा की ओर आकर्षित करता हूं जो कि हमें एक अपरिवर्तनशील विचारधारा सी प्रतीत होती है परन्तु जिसमें समय-समय पर परिवर्तन हुए हैं और बड़े-बड़े परिवर्तन हुए हैं और जिसमें आज कल बड़े वेग से परिवर्तन हो रहा है। एक समय ऐसा था जबकि संपत्ति मानव प्राणियों में होती थी। राजा सबका स्वामी होता था। भूमि, पशु तथा मनुष्य इन सबका स्वामी होता था। प्राचीन काल में संपत्ति का अनुमान जितने गाय-बैल आपके पास होते थे उनसे लगाया जाता था। उसके बाद भू संपत्ति अधिक महत्वपूर्ण हुई। धीरे-धीरे मनुष्यों के रूप में संपत्ति न रही। यदि आप उस पिछले काल को लें जब कि दास प्रथा पर वाद-विवाद होता था तो आपको विदित हो जायेगा कि मानव के रूप में संपत्ति के संबंध में उस समय कितने ऐसे ही तर्क प्रस्तुत किये जाते थे जो कभी-कभी अन्य प्रकार की संपत्ति पर प्रस्तुत किये जाते हैं। दास प्रथा का अन्त हो ही गया।

शनैः शनैः संपत्ति के रूप में परिवर्तन हुआ और यह परिवर्तन विधि के द्वारा इतना नहीं हुआ वरन् मानव समाज की प्रगति के द्वारा हुआ। भविष्य के समान वर्तमान हाल में भी संभव है कि भूमि एक बहुत ही महत्वपूर्ण प्रकार की संपत्ति हो। कोई व्यक्ति इसकी उपेक्षा नहीं कर सकता है। फिर भी वर्तमान काल में अन्य प्रकार की संपत्ति उद्योगोन्नत देशों में बहुत महत्वपूर्ण है। अन्ततः आप संपत्ति के इस रूप पर पहुंचते हैं जो एक करोड़पति के हाथों में एक कागज के बंडल में निहित है जिसमें करोड़ों की प्रतिभूतियां और हुन्डियां इत्यादि हैं। आज संपत्ति का यही रूप है और करोड़पति का यही वास्तविक रूप है। कदाचित यह एक आश्चर्यजनक रूप है कि उस संपत्ति की बड़ी सावधानी से रक्षा करनी पड़ती है जो कि बड़ी-बड़ी संपत्तियों के रूप में केवल एक पत्र है। दूसरे शब्दों में संपत्ति आज कल अधिकाधिक रूप में एक प्रत्यय का प्रश्न होता जाता है। वह अधिकाधिक अभौतिक होती चली जा रही है तथा अधिकाधिक निराकार रूप ग्रहण करती चली जा रही है। एक प्रत्ययवान व्यक्ति के पास अधिक संपत्ति है, वह संपत्ति खड़ी कर सकता है और उस प्रत्यय से आश्चर्यजनक कार्य कर सकता है। परन्तु जिस व्यक्ति का प्रत्यय नहीं है वह कुछ भी नहीं कर सकत है। सभा के सामने केवल यह दिखाने के लिये मैं यह कह रहा हूं कि अनेक औद्योगिक तथा अन्य प्रकार की क्रान्तियों के कारण जबकि समाज में बड़ी तेजी से परिवर्तन हो रहे हैं इस संपत्ति के विचार में भी परिवर्तन हो रहा है।

एक और परिवर्तन होता है। संपत्ति तो संपत्ति ही रहती है पर उस संपत्ति के स्वामित्व का विस्तार हो जाता है। एक छोटे से अंश का स्वामी होने की अपेक्षा व्यक्ति न्यूनाधिक रूप में एक बहुत बड़े अंश का स्वामी बनना आरम्भ कर देता है और उसके बाद वह एक बहुत बड़ी संपत्ति का साझीदार बन जाता है। और उससे लाभ उठाता है यद्यपि वह उसका पूर्ण स्वामी नहीं होता है। इस प्रकार से सहयोगी उपक्रम आरम्भ हुए और इसी प्रकार से संयुक्त श्रेष्ठि प्रणाली आरम्भ हुई। इस तरह एक प्रकार से संपत्ति के एक बहुत बड़े समूह का, जिसको कभी एक व्यक्ति संधारण नहीं कर पाता था सिवाय कभी किसी बिरले के, एक सदस्य के

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

रूप में उसके एक आंशिक स्वामी होने के विचार का प्रसारण हुआ है। आधुनिक समय में एक सीमित संख्या के व्यक्तियों में धन तथा संपत्ति पर एकाधिकार करने की प्रवृति पाई गई है। भारत में यह बात इतनी लागू नहीं होती है क्योंकि इस दिशा में हम अभी इतना आगे नहीं बढ़े हैं। परन्तु जहां औद्योगिक देशों की वेग से उन्नति हुई है वहां पूंजी पर एकाधिकार हुआ है जिसका फल यह हुआ कि संपत्ति का प्राचीन विचार तथा उसके लिये स्वतंत्र प्रयत्न सरलता से प्रयोज्य नहीं हो पाता है क्योंकि अन्त में कुछ थोड़े से व्यक्ति, जिनका पूंजी पर पूर्ण एकाधिकार है, वास्तव में अपना आतंक जमा देते हैं, छोटे-छोटे दुकानदारों को वे अपनी व्यापार नीति से और इस कारण से कि उनके पास बहुत अधिक धन है मिटा सकते हैं। बिना कुछ प्रतिकर दिये वे उन्हें जड़ से मिटा देते हैं। चन्द व्यक्तियों में धन शक्ति को केन्द्रित करने की इस आधुनिक प्रवृत्ति से छोटे आदमी जड़ से मिट जाते हैं। इस प्रकार से संपत्ति पर वैयक्तिक स्वामित्व की विचारधारा का ह्रास केवल उस सामाजिक प्रगति के कारण नहीं हुआ है जो हमें होती हुई दिखाई देती है तथा न संपत्ति पर सहकारी स्वामित्व की नई विचारधारा के ही कारण हुआ है, वरन् इस पुरानी विचारधारा के प्रबल होने के कारण हुआ है कि एक धनवान जिसके पास पूंजी है वह छोटे लोगों को कौड़ियों के मोल खरीद सकता है।

व्यक्ति की आप किस प्रकार से रक्षा करना चाहते हैं? यह कहते हुए मैंने आरम्भ किया था कि दो दृष्टिकोण हैं—व्यक्ति का दृष्टिकोण और सम्प्रदाय का दृष्टिकोण। परन्तु उन चन्द व्यक्तियों के सिवाय जो स्वयं अपनी रक्षा करने में पर्याप्त रूप से समर्थ हैं आज हम व्यक्तिक की किस प्रकार रक्षा कर सकते हैं। उनकी संख्या कम हो गई है। ऐसी स्थिति में राज्य को संपत्ति पर वैयक्तिक अधिकार की रक्षा करनी होगी। चाहे उसके पास संपत्ति हो, पर उसके लिये वह निरर्थक हो सकती है, क्योंकि मार्ग में कोई एकाधिकार आड़े आ आये और उसे संपत्ति के उपयोग करने से रोके। अतः जब आप यह कहते हैं कि आप व्यक्ति के अधिकार की रक्षा करते हैं तो यह विषय इतना साधारण नहीं है क्योंकि पूंजीवाद और समाजवाद दोनों में आज जो भिन्न-भिन्न शक्तियां कार्य कर रही हैं उनके कारण व्यक्ति संभवतः अपने उस अधिकार को पूर्ण रूप से खो दे।

खैर, यह एक महान् प्रश्न है और कोई भी इसके विभिन्न पहलुओं पर विस्तारपूर्वक विचार कर सकता है। सभा के समक्ष इन अधिक व्यापक वाद हेतुओं की ओर मैं संकेतमात्र करना चाहता हूं क्योंकि मुझे कुछ थोड़ी सी यह आशंका है कि यह सभा कहीं इस समस्या के उन मानवी तथा अन्य पहलुओं की उपेक्षा करते हुए, जो आज वास्तव में संसार का रूप बदल रहे हैं, अत्यन्त बारीक तथा चातुर्य्यपूर्ण वैंध तर्कों से प्रभावित न हो जाये।

सभा को इस समस्या के संक्रान्तिक तथ क्रान्तिकारी पहलुओं को भी ध्यान में रखना है क्योंकि जब आप आज भारत में की भू समस्या पर विचार करते हैं तो आप किसी ऐसी बात के बारे में विचार कर रहे हैं जो प्रगतिशील, गतिमान,

परिवर्तनशील तथा क्रांतिकारी है। भली प्रकार से ये बात भारतवर्ष की दशा दोनों रूपों में बदल सकती है—चाहे आप उनको निपटायें या न निपटायें—वह कोई स्थायी बात नहीं है। वह एक ऐसी बात है जो पूर्णतया निरपेक्ष रूप से विधि तथा संसद के नियंत्रण के अधीन नहीं है। कहने का तात्पर्य यह है कि यदि परिवर्तनशील वातावरण में विधि और संसद स्वयं ठीक रूप में नहीं मिल बैठ पाते हैं तो वे परिस्थितियों का पूर्ण रूप से नियंत्रण नहीं कर पाते हैं। यह एक महान तथ्य है। अतः भारत में तेजी के साथ बदलती हुई स्थिति के प्रसंगानुसार हमें इस प्रश्न पर विचार करना है तथा इस अखिल संसार और एशिया के प्रसंगानुसार हमारा इससे संबंध है।

यह कहना होगा कि इन समस्याओं पर हमें विधि तथा स्मृति संबंधी संकीर्णता में पड़ कर विचार नहीं करना है। यहां कुछ ऐसे माननीय सदस्य हैं जो शुरू से भूमि के स्वामी हैं, जमींदार हैं। स्वभावतः वे यह समझते हैं कि इस भूमि संबंधी विधान से उनके हितों पर प्रभाव पड़ेगा। परन्तु मैं समझता हूं कि जिस रूप में आज इस भूमि संबंधी विधान पर विचार किया जा रहा है—किसी अन्य स्थान के अतिरिक्त संयुक्तप्रान्त के भूमि सम्बन्धी विधान से मैं कुछ अधिक परिचित हूं—जहां तक उनका संबंध है शायद उनको यह रूप पूर्णतया ठीक न प्रतीत हो, परन्तु उनके ही दृष्टिकोण से यह रूप किसी उस अन्य रूप से अधिक न्याययुक्त तथा अच्छा है जो कि बाद में होने वाला है। वह रूप संभवतः किसी विधान के द्वारा न हो। भूमि समस्या को शायद किसी और रूप में तय किया जाये। यदि आप अखिल विश्व तथा अखिल एशिया की स्थिति पर ध्यान दें तो बड़ी-बड़ी संपदाओं के धीरे-धीरे सुधार करने के अतिरिक्त अन्य कोई बात अधिक महत्वपूर्ण तथा मुख्य नहीं है।

यह कोई आज की नीति नहीं है बल्कि राष्ट्रीय कांग्रेस द्वारा वर्षों पूर्व निर्धारित की गई प्राचीन नीति है कि भारत में जमींदारी प्रथा अर्थात् बड़ी-बड़ी संपदाओं पर अधिकार रखने की प्रणाली को मिटा दिया जाये।

जहां तक हमारा संबंध है हम लाग जिनका कांग्रेस से संबंध है वे यह स्वाभाविक ही है कि उस प्रतिज्ञा को पूर्ण रूप से शत प्रतिशत सक्रिय करेंगे और हमारे मार्ग में कोई विधि संबंधी बारीकियां तथा कोई परिवर्तन आड़े नहीं आयेगा। यह बिल्कुल स्पष्ट बात है। हम अपने वचनों का पालन करेंगे। सीमाओं के अन्तर्गत कोई भी न्यायाधीश तथा कोई भी सर्वोच्च न्यायालय अपने आपको एक तीसरा सदन नहीं बना सकता है। समस्त संप्रदाय की इच्छा का प्रतीक संसद की संपूर्ण-प्रभुत्व-संपन्न इच्छा के परे किसी सर्वोच्च न्यायालय तथा न्यायपालिका का निर्णय नहीं टिक सकता है। यदि यदा कदा हमसे कोई गलती हो जाती है तो वह उसे बता सकती है परन्तु अन्ततः जहां कि संप्रदाय के भविष्य का प्रश्न है मार्ग में कोई न्यायपालिका आड़े नहीं आ सकती है। परन्तु फिर भी अपने देश की न्यायपालिका, सर्वोच्च न्यायालय तथा अन्य उच्च न्यायालयों को हमें सम्मान करना चाहिये। बुद्धिमान व्यक्ति होते हुए उनका यह कर्तव्य है कि वे यह देखें कि उत्तेजनावश तथा आवेश में आकर कहीं जनता के प्रतिनिधियों ने भी गलती तो नहीं की है—उनसे गलती हो सकती है। न्यायालय के निष्पक्ष वातावरण में उनको यह देखना चाहिये कि कोई

[माननीय श्री जवाहरलाल नेहरू]

भी ऐसा काम न किया जाये जो संविधान के विरुद्ध हो, जो देश के हित के विरुद्ध हो और जो संप्रदाय के अधिक व्यापक अर्थ में उसके विरुद्ध हो। अत: यदि ऐसी कोई बात होती है वे उस बात की ओर ध्यान आकर्षित करें, पर यह स्पष्ट है कि कोई भी न्यायालय, कोई भी न्यायपालिका एक तीसरे सदन के रूप में, एक प्रकार से शुद्ध करने वाले तीसरे सदन के रूप में प्रकार्य नहीं कर सकते हैं। अत: यह आवश्यक है कि इन परिसीमाओं के अधीन न्यायपालिका को प्रकार्य करना चाहिये।

आपने यह निश्चय किया है, इस सभा ने यह विनिश्चत किया है और शायद अधिकांश प्रान्तीय सरकारों ने यह विनिश्चय किया है कि दूसरा सदन रखा जाये। ऐसा क्यों निश्चित किया गया है? दूसरा सदन भी अधिकतर एक निर्वाचित सदन है। शायद ऐसा उन्होंने इसलिये विनिश्चित किया है कि प्रथम सदन के शीघ्रता में किये गये किसी विनिश्चय पर हम कहीं रोकथाम चाहते हैं जिस विनिश्चय के प्रति बाद में स्वयं उसी सदन को खेद हो और वह उसे वापस लेना चाहे। अत: इस दृष्टिकोण से किसी छोटे मामले के लिये नहीं वरन् इस आधारभूत सिद्धान्त के लिये जिसको आप निर्धारित करते हैं यह वांछनीय है कि कुछ लोग रखे जाये जिनका यह कर्तव्य हो कि वे यह देखें कि आप गलती तो नहीं करते हैं यह वांछनीय है कि कुछ लोग रखे जाये जिनका यह कर्तव्य हो कि वे यह देखें कि आप गलती तो नहीं करते हैं क्योंकि कभी-कभी विधान-मण्डल भी गलती कर सकता है परन्तु अन्त में तथ्य यह है कि विधान-मंडल सर्वोच्च है और सामाजिक सुधार के ऐसे उपक्रमों में न्यायालय द्वारा उस के मार्ग में बाधा नहीं होनी चाहिये। अन्यथा आप आश्चर्य जनक कार्यपद्धतियां अंगीकर करेंगे और यह सत्य है कि उनमें से एक पद्धति संविधान में परिवर्तन करने की है, दूसरी वह है जिसे हम समुद्र पार के देशों में देखते हैं कि कार्यपालिका जो कि न्यायपालिका को नियुक्त करने की प्राधिकारिणी है वह अपने पक्ष में विनिश्चय कराने के लिये अपनी इच्छा के अनुकूल न्यायाधीशों को नियुक्त करती है, परन्तु यह एक बहुत अच्छी रीति नहीं है।

अत: मैं निवेदन करता हूं कि इस संकल्प में जो विचार प्रस्तुत किया है, वह दोनों व्यक्ति और संप्रदाय की रक्षा करता है। उसमें अन्तिम प्राधिकार संसद को दिया गया है केवल किसी भीषण त्रुटि के मामले में, संविधान के विरोध करने या ऐसे ही अन्य मामलों में, उच्चतर न्यायालयों को जांच का अधिकार है अन्यथा नहीं। और अन्त में कुछ लम्बित विषयों के सम्बन्ध में तथा उन विषयों के सम्बन्ध में जो पार किये जा चुके हैं, यह स्पष्ट कर दिया गया है कि किसी प्रकार की बाधा न हो। मैं इस संशोधन को सभा के समक्ष प्रस्तुत करता हूं।

***श्री श्यामानन्दन सहाय** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, इससे पूर्व कि हम इस संशोधन के वाद विवाद में अग्रसर हों जो कि इस समय अनुच्छेद 24 के मसौदे के रूप में है मैं औचित्य सम्बन्धी प्रश्न के संबंध में एक प्रारंभिक आपत्ति करूंगा। अपना निवेदन करने के पूर्व मैं यह कहना चाहूंगा कि इस अनुच्छेद में बाधा डालने के लिये मैं ऐसा नहीं कर रहा हूं, परन्तु मैं स्वयं अपनी इस

तुच्छ रीति से एक दोष की ओर ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं जो इसमें है। श्रीमान, आपका तथा माननीय प्रस्तावक महोदय का ध्यान मैं इस अनुच्छेद के खंड (4) की ओर आकर्षित करना चाहता हूं जो इस प्रकार है:—

"If any Bill pending before the Legislature of a State at the commencement of this Constitution has, after it has been passed by such Legislature, received the assent of the President, the law so assented to shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article."

[यदि इस संविधान के प्रारम्भ पर किसी राज्य के विधान-मंडल के सामने किसी लम्बित विधेयक को ऐसे विधान-मंडल द्वारा पार किये जाने के पश्चात् राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो इस प्रकार अनुमत विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करती है।]

श्रीमान, यदि आप मूलाधिकार समिति की सिफारिशों पर इस सभा के वाद-विवाद की ओर कृपा कर निर्देश करेंगे तो आपको विदित होगा कि उन्होंने इस सिद्धान्त को स्वीकार किया था कि प्रतिकर दिये बिना किसी संपत्ति पर अधिकार या उसका अर्जन नहीं किया जायेगा। श्रीमान, इसी विचार को माननीय प्रधान मंत्री ने भी अभी प्रकट किया था, जबकि इस विषय पर प्रारम्भिक भाषण देते हुए उन्होंने कहा था कि बिना प्रतिकर के अधिकार च्युत करने का प्रश्न ही नहीं है। इस सभा में जो हमने सिद्धान्त स्वीकार किया था उसका तथा अपना संशोधन पेश करते हुए अभी माननीय प्रधान मंत्री ने जो वक्तव्य दिया उसका मैं आधार ग्रहण करता हूं। अब यदि हम सावधानीपूर्वक खंड (4) के शब्दों को पढ़ें....।

***श्री बी. दास** (उड़ीसा : जनरल): क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि मेरे मित्र किस मूलाधिकार का उल्लेख कर रहे हैं?

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन का खंड 19। यदि आप को पृष्ठ संख्या चाहिये तो वह मैं आपको बताऊंगा।

***कुछ माननीय सदस्य:** परन्तु हमने क्या अनुच्छेद पास किया है।

***अध्यक्ष:** मैं माननीय सदस्यों से निवेदन करूंगा कि वे सदस्य को अपनी बात कहने दें अभी वे औचित्य प्रश्न पर नहीं आये हैं। वे प्रारम्भिक बातें कर रहे हैं। उन्हें अपने औचित्य प्रश्न को रखने दीजिये।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** यदि आप इस अनुच्छेद के खंड (4) को पढ़ेंगे तो यह विदित होगा कि विधान-मंडल में लम्बित विधेयक पर किसी न्यायालय में

[श्री श्यामानन्दन सहाय]

इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है। खंड (2) में ही हमने यह उपबन्ध किया है कि संपत्ति पर कब्जा या उसका अर्जन करने के लिये जो कोई विधि पार की जाती है वह प्रतिकर का उपबन्ध करे और या तो प्रतिकर की राशि को नियत करे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख करे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है और खंड (4) में निर्धारित किया है कि यदि कोई विधेयक खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है तो किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकती है जिसका अभिप्राय यह है कि वह विधान-मंडल को यह शक्ति दे रहा है कि यदि वह आवश्यक समझे तो बिना किसी प्रतिकर के दिये संपत्ति पर कब्जा करने या उसका अर्जन करने की विधि पारित कर सकता है। प्रतिकर का उपबन्ध खंड (2) में ही है अन्यत्र नहीं।

पं. बालकृष्ण शर्मा (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, क्या मैं यह कह सकता हूं कि जो तर्क माननीय सदस्य ने प्रस्तुत किये हैं वे किसी प्रकार से भी औचित्य प्रश्न से संबंधित नहीं हैं? वे सभा के समक्ष केवल प्रस्थापना पर वाद-विवाद कर रहे हैं और इस कारण.....।

***अध्यक्ष:** जहां तक मैं समझ पाया हूं वे खंड (4) के सम्बन्ध में अपना औचित्य प्रश्न कर रहे हैं। मैं यह नहीं जानता कि वे ठीक हैं या गलत। मैं केवल यह बता रहा हूं कि जो कुछ मैंने उनकी बात से समझा है उसके अनुसार वे किस बात पर जोर दे रहे हैं। खंड (4) जिस रूप में इस समय प्रस्तुत किया गया है उसके अधीन यदि कोई विधेयक जो कि इस समय लम्बित है या जो इस संविधान के प्रारम्भ के समय लम्बित रहेगा उसमें यदि प्रतिकर देने का या जिस सिद्धान्त अथवा रीति के अनुसार प्रतिकर निश्चित किया जायेगा उसके निर्धारण करने का उपबन्ध नहीं होता है और यदि वह विधेयक पारित हो जाता है और उस पर राष्ट्रपति की अनुमति मिल जाती है तो उस पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जा सकती है। उनका औचित्य प्रश्न यह है कि लम्बित विधेयकों के विषय में इसके द्वारा आप खंड (2) का शून्यन कर रहे हैं। उनका यही औचित्य प्रश्न है।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** मेरा प्रश्न ठीक यही है।

***पं. बालकृष्ण शर्मा:** यदि हम पूर्ववर्ती खंड में रूप में भेद करें तो भी कोई औचित्य प्रश्न आ जाता है? यह हमारा निकाय सर्वोच्च है।

***श्री श्यामानन्दन सहाय:** बिल्कुल ठीक। हम उसे समझ लें। सभा को इस बात का ज्ञान हो जाना चाहिये कि वह क्या पारित कर रही है। यदि सभा किसी ऐसे विधान को पारित करने के लिये उद्यत है जो विधान-मंडल को बिना प्रतिकर के अधिकारच्युत करने के विधान तक को पारित करने की शक्ति देता है और यदि ठीक यही विचार माननीय प्रधान मंत्री का है जो इस संशोधन के पेश करने वाले हैं तब तो मुझे कुछ कहना ही नहीं है। जैसाकि मैं कह चुका हूं, मेरा आधार जो कुछ हम इस सभा में मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन के खंड 19 तथा इस

संविधान के खंड 13 और 15 में पारित कर चुके हैं और जो कुछ इस अनुच्छेद के खंड (2) में दिया हुआ है उन पर है और जब मैं यह देखता हूं कि खंड (4) उन उपबन्धों का उल्लंघन करता है तथा उनका खंडन करता है तो, श्रीमान मेरा यह विचार करना स्वाभाविक है कि जब तक उसमें उचित रूप से संशोधन न किया जाये तब तक इस प्रकार के उपबन्ध को संविधान में स्थान नहीं मिलना चाहिये। मेरी पूरी बात यह है। यह भी सच है कि खंड (6) के संबंध में भी यही तर्क है, पर एक सी बात होने के कारण मैं आपका और अधिक समय नहीं लेना चाहता हूं।

अपने स्थान ग्रहण करने के पूर्व जो कुछ मैं कहना चाहता हूं वह यह है कि यह एक ऐसी बात है जो बहुत महत्वपूर्ण है। सभा को यह जानना चाहिये कि हमारी स्थिति क्या है। हम एक ऐसी विधि पार करना चाहते हैं जिसके द्वारा हम बिना प्रतिकर के अधिकार च्युत कर सकते हैं। यदि सभा का यह विचार नहीं है और यदि इस संशोधन में यह विचार निहित नहीं है तो उसका उचित रूप में संशोधन होना चाहिए और श्रीमान, यदि यह कहा जाये कि यह नहीं हो सकता कि विधान-मंडल जिसमें बड़े-बड़े योग्य व्यक्ति होते हैं तथा विभिन्न सरकारों में भी ऐसे व्यक्ति होते हैं, इस कारण वह बिना प्रतिकर के विधान नहीं पारित करेगा और किसी ऐसे विधान के पारित होने की हम आशंका न करें तो मैं केवल यही कहूंगा कि माननीय प्रधान मंत्री जैसा लोकतंत्रवादी नेता हमें व्यक्तियों की सद्भावना पर निर्भर होने की मंत्रणा नहीं देगा और न अपने अधिकारों की रक्षा के लिये स्वयं संविधान के उपबन्धों पर निर्भर होने की।

***माननीय श्री घनश्याम सिंह गुप्त** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय इसमें संदेह नहीं कि खंड (4) खंड (2) का एक अपवाद है। "सब अनुच्छेदों में उनके पूर्ववर्ती अनुच्छेदों के अपवाद हैं।" हम सदैव यही कहते हैं कि "इस बात के होते हुये भी" और "परन्तु" इत्यादि इत्यादि और मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि कोई औचित्य प्रश्न उठता हो क्यों खंड (4) खंड (2) का केवल अपवाद है। ऐसा अपवाद हम रखें या न रखें यह बात दूसरी और क्या किसी सारवत् खंड में कोई अपवाद हो सकता है यह बात दूसरी है। प्रत्येक परन्तुक हम ऐसे अपवाद को प्राधिकृत करते हैं। अतः मैं जो कुछ निवेदन करना चाहता हूं। वह यह है कि माननीय सदस्य ने कोई औचित्य प्रश्न नहीं किया है। हां, यदि हम अपवाद को हटा दें और प्रधान मंत्री को यह शक्ति दे दें कि खंड (2) में ऐसा अपवाद नहीं किया जायेगा तो बात दूसरी है।

***श्री विश्वनाथ दास** (उड़ीसा : जनरल): मैं बोलना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** क्या आप औचित्य प्रश्न का समर्थन करना चाहते हैं?

***श्री विश्वनाथ दासः** मैं इस औचित्य प्रश्न का विरोध करना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** आप के विरोध की आवश्यकता नहीं है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद** (पश्चिमी बंगाल : मुस्लिम): श्रीमान, मैं कुछ का समर्थन करना चाहता हूं और कुछ का विरोध।

***अध्यक्षः** आप ने अवश्य ही भाषण देने की बात पक्की कर ली!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, औचित्य प्रश्न से दो बातें पैदा होती हैं। पहली यह कि मूलाधिकारों पर के अपने ही विनिश्चयों का हम विरोध कर रहे हैं। जहां तक तर्क के इस अंश का संबंध है मैं उसका समर्थन करता हूं। सभा ने जो विनिश्चय किया था उसको केवल नियमित दीति से ही बदला जा सकता है और यदि हमें खंड (4) को स्वीकार करना है तो हमें नियमित रूप से अपने विनिश्चय को बदलना चाहिये अर्थात् जिस रूप से नियमों में निर्धारित है। अतः नियमित रूप से हमारे विनिश्चयों के बदले जाने के अधीन औचित्य प्रश्न का यह भाग सही है।

औचित्य प्रश्न के दूसरा भाग, कि यह खंड (2) का उल्लंघन करता है, वास्तव में कोई औचित्य प्रश्न नहीं है। यह तो शायद औचित्य पर तर्क है। औचित्य को मैं नहीं लेना चाहता हूं, पर मैं समझता हूं कि वह औचित्य प्रश्न नहीं है। वैध रूप में विधि बनाने और अपवाद का उपबन्ध करने की शक्ति इस सभा को है।

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि माननीय सदस्य ने एक औचित्य प्रश्न उठाया हो। इस अनुच्छेद में कई खंड हैं उनमें से कुछ उन बातों को विशिष्टता प्रदान करते हैं जो पूर्ववर्ती खंड में कही गई हैं। सब विधानों में ऐसा बहुधा होता है और इससे कोई वास्तविक औचित्य प्रश्न पैदा नहीं होता। यह एक प्रश्न है कि यह खंड रहे या न रहे और यह उसके गुणावगुण पर निर्भर करता है और इसका विनिश्चय करना सभा के हाथों में है और इस कारण कोई औचित्य प्रश्न नहीं है।

इसके बाद मैं सदस्यों से संशोधनों को लेने के लिये निवेदन करूंगा।

***श्री बी. दासः** एक सूचना संबंधी प्रश्न है, श्रीमान, क्या प्रत्येक सदस्य अपना संशोधन पेश करेगा और उस पर भाषण देगा या सब संशोधनों के पेश हो जाने के बाद भाषण देने की आज्ञा मिलेगी?

***अध्यक्षः** प्रत्येक सदस्य जो अपना संशोधन पेश करेगा उससे मैं आशा करूंगा कि वह अपना भाषण दे जिससे कि उसे दुबारा भाषण न देना पड़े।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, एक और कठिनाई है। मैं यह जानना चाहता हूं कि क्या खंडवार संशोधन लिये जायेंगे क्योंकि सूची से मुझे यह विदित होता है कि उनको इसी प्रकार से सामूहिक रूप में रखा गया है।

***अध्यक्षः** मैं संशोधनों को लूंगा और फिर वाद विवाद होगा और मत लेने के समय मैं यह निश्चित करूंगा कि समस्त अनुच्छेद को लिया जाये या खंडों को पृथक्-पृथक् लिया जाये।

***श्री दामोदर स्वरूप सेठ** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, आपकी अनुमति से मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्तावित अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24 (a) The property of the entire people is the mainstay of the State in the development of national economy.

(b) The administration and disposal of the property of the entire people are determined by law.

(c) Private property and private enterprises are guaranteed to the extent they are consistent with the general interests of the Republic and its toiling masses.

(d) Private property and economic enterprises as well as their inheritence may be taxed, regulated, limited, acquired and requisitioned, expropriated and socialised but only in accordance with the law. It will be determined by law in which cases and to what extent the owner shall be compensated.

(e) Expropriation over against the States, local self-governing institutions, serving the public welfare, may take place only upon the payment of compensation.' "

[24 (क) राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति में समस्त लोक की सम्पत्ति राज्य का सबसे बड़ा आधार है।

(ख) समस्त लोक की संपत्ति का प्रशासन और यापन विधि द्वारा विनिश्चित किया जाता है।

(ग) निजी संपत्ति और निजी उद्यमों की वहीं तक प्रत्याभूति की जाती है जहां तक कि वे गणराज्य तथा उसके श्रमिक वर्गों के साधारण हितों से संगत है।

(घ) निजी संपत्ति तथा आर्थिक उद्यमों तथा उनके उत्तराधिकार पर भी करारोपण, उनका विनियमन, परिसीमन, अर्जन तथा अधिग्रहण, हरण तथा समाजीकरण होगा परन्तु केवल विधि के अनुसार। विधि द्वारा यह विनिश्चय किया जायेगा कि किन विषयों में और किस सीमा तक स्वामी को प्रतिकर दिया जाये।

(ङ) राज्यों और लोक कल्याणार्थ स्थानीय स्वायत्तशासी संस्थाओं की संपत्ति का हरण प्रतिकर देने पर ही हो सकेगा।]

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

श्रीमान, अपने इस संशोधन के समर्थन में बोलने के पूर्व यदि मैं प्रस्तावित संशोधन की भूमिका के रूप में कुछ कहूं तो आशा करता हूं कि मुझे क्षमा कर दिया जायेगा। जनता के आर्थिक अधिकारों के प्रश्न पर उचित रूप से विचार करने में मेरी तुच्छ सम्मति से यह संविधान का मसौदा असफल रहा है और कदाचित एक दु:खद रूप में असफल रहा है। मुझे विश्वास है कि यह अनुच्छेद 24 जो कि इस समय विचाराधीन है वह भारत के पूंजीवादियों के हाथों में शीघ्र ही एक अधिकार पत्र होने वाला है। कुछ वर्ष पूर्व जब हम विदेशी शासन के अधीन थे हम बड़े उत्साहपूर्वक यह आशा कर रहे थे और यह आशा निराशा में आशा की किरण की भांति न थी कि स्वतंत्र भारत में इस देश की जनता वास्तव में एक जनता के संविधान का निर्माण कर सकेगी तो समष्टि रूप से श्रमिक वर्गों के लिये एक अधिकार पत्र के समान होगा। परन्तु खेद है, श्रीमान, कि स्वदेशी राज्य के दो वर्षों ने हमें केवल निराश ही नहीं किया, वरन् उच्चतर जीवनयापन तथा समृद्धिशाली भारत की हमारी आशायें धूल में मिला दी गईं। जनता का जीवन स्तर शनै: शनै: नीचे गिर रहा है और जीवन के लिये आवश्यक उपकरणों का मूल्य दिन प्रतिदिन बढ़ता जा रहा है। कोई व्यक्ति यह नहीं कह सकता है कि इस मूल्य-वृद्धि तथा जनता की अधोगति को प्राप्त होती हुई इस आर्थिक दशा का कहां और कब अन्त होगा। श्रीमान, मध्यम वर्ग के लोगों की दशा अकथनीय रूप में दयनीय है। यह सब उस प्रसिद्ध ऐतिहासिक "भारत छोड़ो संकल्प" के समक्ष हो रहा है जिसमें इस दशा के श्रमिक वर्गों को राम राज्य का पक्का वचन दिया गया था अर्थात् यह कि विदेशियों से राजनैतिक और आर्थिक शक्ति छीन कर उनके हाथों में सौंप दी जायेगी। यह भी सत्य है कि अब भी यह प्रयत्न किया जाता है कि कुछ प्रलोभनयुक्त वचनों और मधुर शब्दों द्वारा थपकियां देकर श्रमिक वर्ग को सुषुप्त दशा में कर दिया जाये। यदि मुझे ठीक स्मरण है तो, श्रीमान, अब भी भारत के माननीय प्रधान मंत्री ने, जिन्होंने अभी इस अनुच्छेद 24 को पेश किया है, लक्ष्यमूलक संकल्प पर भाषण देते हुए अत्यन्त स्पष्ट और जोरदार शब्दों में घोषणा की थी कि वे समाजवाद के पक्ष में हैं और भारत समाजवादी गणराज्य बन कर रहेगा। यदि वास्तव में इस देश में समाजवादी गणराज्य की स्थापना करनी है या जैसा कि बार-बार राष्ट्रीय कांग्रेस भारत के प्रधान निश्चित रूप से कहते हैं कि आगामी पांच वर्ष में भारत में वर्गहीन समाज हो जायेगा तो समाजवादी गणराज्य या वर्गहीन समाज हमारे इस देश में आकाश से तो टपकेगा नहीं। यदि उनका वास्तव में कुछ अर्थ है तो इसके लिये जनता के आर्थिक अधिकारों के प्रश्न पर ठीक रूप से विचार कर कुछ प्रारम्भिक कार्य करने और मार्ग प्रशस्त करने की आवश्यकता है।

श्रीमान, यह पूरा का पूरा अनुच्छेद 24 और विशेषकर खंड (2) को अस्पष्ट रूप में ही नहीं बनाया गया है वरन् इसका रूप बड़ा दुखद है। यह स्पष्ट नहीं है कि "लोक प्रयोजनों के संपत्ति अर्जन" में भूमि तथा उद्योगों का समाजीकरण निहित है या एक वर्ग के लोगों से दूसरे वर्ग के लोगों में संपत्ति का अनिवार्य हस्तान्तरण है। यह तर्क भली प्रकार प्रस्तुत किया जा सकता है कि इन शब्दों का अर्थ सरकार, स्थानीय स्वायत्तशासी निकाय और अन्य पूर्त तथा लोक संस्थाओं के केवल साधारण प्रयोग के लिये संपत्ति के अर्जन से है और इसका विस्तार

राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण तक नहीं किया जा सकता है। अतः इस विषय को स्पष्ट करना आवश्यक है और मेरी तुच्छ सम्मति में स्पष्टीकरण तब तक नहीं हो सकता है जब तक कि हम इस विचार तथा मैं तो यह कहूंगा कि इस सिद्धान्त का परित्याग न करें कि संपत्ति में मनुष्य का प्राकृतिक अधिकार है तथा इस विचार का भी कि संपत्ति व्यक्तित्व की अनुमान सूचक है और संपत्ति पर कोई आक्रमण करना स्वयं व्यक्तित्व से हस्तक्षेप करना है। व्यक्तित्व को हम संपत्ति के साथ नहीं मिला सकते हैं और न हम संपत्ति के सामाजिक तथा प्रकार्य संबंधी रूप को ही भूल सकते हैं। मनुष्य का संपत्ति में कोई प्राकृतिक अधिकार नहीं है। संपत्ति का दावा संप्रदाय द्वारा अभिज्ञात विधि के आधार पर किया जाता है। श्रीमान, संपत्ति संबंधी विधियों में रूप भेद करने और जनता के सार्वजनिक, सामाजिक और आर्थिक हितों के लिये उसे अर्जन करने का अधिकार समाज ने सदैव अपने लिये सुरक्षित रखा है। संपत्ति एक सामाजिक संस्था है और अन्य सामाजिक संस्थाओं के समान यह भी सार्वजनिक हितों के विनियमों और दावे के अधीन है।

समय-समय में संपत्ति संबंधी विधियों में परिवर्तन हुआ है। मध्य युग में बिना प्रतिकर के अनेक स्वामित्व संबंधी विधियों को मिटा दिया गया। उदाहरणार्थ, अमरीका में जब दासत्व की विधि को मिटाया गया तो दास-स्वामियों को कोई प्रतिकर नहीं किया गया। यद्यपि उस दावे को प्राप्त करने के लिये उनमें से बहुतों को नकद धन देना पड़ा था। यह समझ लेना चाहिये कि समस्त जनता की संपत्ति राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था की उन्नति में राज्य का मुख्य आधार है और निजी संपत्ति पर अधिकार संप्रदाय के मार्ग में आड़े नहीं आने या संप्रदाय के लिये अहितकारी रूप में प्रयुक्त नहीं होने दिया जायेगा। जनता के सार्वजनिक हित में विधि द्वारा संपत्ति का विनियमन, परिसीमन तथा हरण करने का पूर्ण अधिकार होना चाहिये। प्रतिकर के सिद्धान्त को संपत्ति हरण करने के लिये एक शर्त के रूप में वेद वाक्य के समान नहीं स्वीकार किया जा सकता है। मृत्यु कर बिना प्रतिकर के आंशिक हरण का एक रूप है और संसार के कई समुन्नत देशों में वित्त व्यवस्था का वह एक प्रमुख अंग है।

संसार में यह एक मानी हुई सी बात है कि संपत्ति के स्वामियों को पूर्ण प्रतिकर सामाजिक तथा आर्थिक उन्नति की महान योजनाओं का क्रियान्वित होना असंभव कर देगा। आपात काल में अथवा विदोहन को मिटाने के लिए और आर्थिक कल्याण की वृद्धि करने के विचार से बड़े-बड़े उद्योगों का समाजीकरण करने के प्रयोजन हेतु अधिगृहीत तथा अर्जित की गई संपत्ति के लिये सब दशाओं में तथा बाज़ार भाव से संपत्तियों के स्वामियों को धन देना राज्य के लिये असंभव है। संसार के कई विचारकों ने एक मध्यम मार्ग के रूप में आंशिक प्रतिकर का सुझाव दिया है और उनकी यह धारणा है कि आंशिक प्रतिकर से न तो समाजीकरण में रुकावट पड़ेगी और न इससे अधिक संख्या में लोग अपने जीवन-यापन के साधन से वंचित हो जायेंगे। यदि समाजीकरण का धीरे-धीरे प्रसार करना है और व्यक्तिगत अर्थव्यवस्था को एक व्यापक क्षेत्र में बनाये रखना है तो आंशिक प्रतिकर के पक्ष में बहुत कुछ कहा जा सकता है। यदि आर्थिक व्यवस्था में समाजवादी आधारों के अनुसार परिवर्तन हो जाता है तो आंशिक प्रतिकर भी न्याययुक्त नहीं रहेगा। ऐसी दशा में

[श्री दामोदर स्वरूप सेठ]

समाजवादी अर्थव्यवस्था के अन्तर्गत रूढ़गत स्वार्थों से युक्त व्यक्ति जो कुछ दावा कर सकते हैं वह यह है कि राज्य के अन्य नागरिकों के साथ-साथ उन्हें भी समान अवसर और समान भाग मिले। अतः श्रीमान, प्रतिकर के विषय पर अंधविश्वास करना संभव नहीं है और राज्यों को समाज की इच्छा तथा प्रचलित सामाजिक वातावरण के अनुसार प्रतिकर विनिश्चित करने के लिये स्वतंत्र छोड़ दिया जाये।

श्रीमान, जनता की आवश्यकतायें बहुधा यह अपेक्षित कर देती हैं कि संपत्ति का एक प्राधिकारी से दूसरे प्राधिकारी में हस्तान्तरण किया जाये। उदाहरण के रूप में विभिन्न नगरपालिकाओं के अधीन तथा उनके द्वारा प्रबन्धित लोक-उपयोग उपक्रमों का कुछ समय के बाद प्रान्तीय आधार पर संग्रह करना पड़ता है। लोक कल्याण के लिये यह आवश्यक है कि उनको एक प्राधिकारी से दूसरे प्राधिकारी में अर्थात् प्रान्तीय प्राधिकारी में हस्तान्तरण किया जाये। परन्तु इस हस्तान्तरण में प्रतिकर होना चाहिये विशेष कर जबकि विधि द्वारा भिन्न-भिन्न लोक प्राधिकारियों को पृथक्-पृथक् हिसाब, वित्त, परिसम्पत्ति और देय रखने दिया जाता है। अतः बिना प्रतिकर के लोक संपत्ति का एक प्राधिकारी से दूसरे प्राधिकारी में हस्तान्तरण करने से निम्नतर श्रेणी की संस्थाओं और निकायों की सुदृढ़ वित्तीय व्यवस्था जर्जरित हो जायेगी और वह पारस्परिक सौहार्ध भी जर्जरित हो जायेगा जो संघ राज्य के भिन्न-भिन्न प्रदेशों के लिये बहुत आवश्यक है। अतः प्रान्तों, राज्यों, स्थानीय स्वायत्तशासी निकायों और लोक हित के कार्य में लगी हुई संस्थाओं की संपत्ति हरण करने पर प्रतिकर का उपबन्ध करना आवश्यक है।

अतः श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि इस सभा के माननीय सदस्य मेरे इस संशोधन पर गंभीर विचार करेंगे और भारत के श्रमिक वर्गों के हित में यदि वे यह वांछनीय समझते हैं कि उनके आर्थिक अधिकारों पर समुचित रूप में तथा उस भावना से जिससे कि उन पर विचार किया जाना चाहिये यदि विचार किया जाता है तो इस सभा के माननीय सदस्यों के लिये मेरा संशोधन स्वीकार करने में कोई कठिनाई नहीं होगी।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 से 769 के निर्देशानुसार अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property saved by authority of law.

(2) No property, movable or immovable, including any interest in, or in any company owning any commercial or industrial

undertaking, shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition except on payment in cash or bonds or both of the amount determined as compensation in accordance with principles laid down by such law.

(3) Nothing in clause (2) of this article shall affect—

(a) the provisions of any existing law, or

(b) the provisions of any law which the State may hereafter make for the purpose of imposing or levying any tax or for the promotion of public health or the prevention of danger to life or property.' "

[24. (1) विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।

(2) कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये नकदी या हुंडी या दोनों में उस राशि को देकर ही कब्जाकृत या अर्जित की जायेगी जो उस विधि में निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिकर के रूप में निश्चित की जाती है।

(3) खंड (2) की किसी बात से–

(क) किसी वर्तमान विधि के उपबन्धों पर, अथवा

(ख) एतत्पश्चात् राज्य कोई विधि किसी कर के आरोपण या उद्ग्रहण के अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या संपत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये उसके उपबन्धों पर, प्रभाव नहीं होगा।]

श्रीमान, क्या मैं संशोधन संख्या 516 भी पेश कर सकता हूं जो वास्तव में इसका ही भाग है?

***अध्यक्षः** वह पृथक् है। हम उसे बाद में लेंगे।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** श्रीमान, इस पर टीका करने के पूर्व मैं यह चाहता हूं कि सभा मेरे तथा माननीय प्रधान मंत्री के संशोधन में जो अन्तर है

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

उसे समझ ले। प्रधान मंत्री के संकल्प के खंड (1) में वही कहा गया है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा परन्तु विशेष अन्तर खंड (2) में है। उनके संशोधन में खंड (2) भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 की शुद्ध प्रतिलिपि है। केवल 3 शब्द निकाल दिये गये हैं। मैं खंड (2) को पढ़कर सुनाऊंगा:

"किसी भूमि का अथवा किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम का अथवा किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में किसी अंश का सार्वजनिक प्रयोजन के लिये अनिवार्य अर्जन की तब तक कोई विधि बनाने की शक्ति न अधिराज्य विधान-मंडल को और न प्रान्तीय विधान-मंडल को होगी जब तक कि वह विधि अर्जित संपत्ति का प्रतिकर "देने के लिये" उपबन्ध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे जिन से प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है।"

अत: पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा प्रस्थापित इस नये अनुच्छेद से हम अपने नये संविधान में धारा 299 के उपबन्धों को सदैव के लिये रख रहे हैं। केवल दो अपवाद किये गये हैं और वे खंड (4) और (6) हैं।

इन संशोधनों की योजना विशेष रूप से संयुक्तप्रान्त तथा बिहार और मद्रास के जमींदारी विधान की रक्षा के लिये की गई है। खंड (4) संयुक्तप्रान्त के ज़मींदारी उन्मूलन विधेयक की रक्षा के लिये है और खंड (6) बिहार और मद्रास विधान-मंडल द्वारा पार किये गये अधिनियमों की रक्षा के लिये है। इस विषय में भी मुझे आशंका है कि यदि उन नये संशोधनों को पारित कर लिया जाता है जिनकी सूचना श्री अल्लादी और श्री मुंशी ने संख्या 504 से 506 तक के संशोधनों के संबंध में दी है तो मैं समझता हूं कि अपने वर्तमान रूप में मद्रास और बिहार के विधेयक भी इस संविधान के कुछ विरुद्ध हो जायेंगे। अत: वास्तव में केवल जिस अधिनियम की रक्षा की गई है वह संयुक्तप्रान्त का जमींदारी संबंधी विधान है।

श्रीमान, अब मैं सभा से यह प्रश्न पूछना चाहता हूं। क्या सभा इस स्थिति की रक्षा करने के लिये उद्यत है कि संयुक्तप्रान्त की जमींदारी संपत्ति को छोड़कर देश में अन्य कोई संपत्ति लोक प्रयोजनों के या राज्य के हित के लिये अर्जित नहीं की जायेगी? माननीय प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये अनुच्छेद में ये शब्द हैं:—

"कोई..... संपत्ति..... कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित सम्पत्ति के लिये प्रतिकर का उपबंध न करती हो और या तो प्रतिकर की राशि को नियत न कर दे या उन सिद्धान्तों और रीति का उल्लेख न कर दे जिनसे प्रतिकर निर्धारित होना है और दिया जाना है।"

विधि में 'प्रतिकर' शब्द से 'ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर' अभिप्रेत है। ठीक और उचित प्रतिकर क्या होगा? पंडित जवाहरलाल नेहरू के संशोधन के अधीन

इस बात का विनिश्चय करने के लिये संसद अन्तिम प्राधिकार नहीं है। संसद या विधान-मंडल कोई भी राशि नियत कर सकते हैं या प्रतिकर निश्चित करने के लिये कोई भी सिद्धान्तों का उल्लेख कर सकते हैं फिर भी सर्वोच्च न्यायालय अन्तिम रूप में यह विनिश्चित करेगा कि जो राशि नियत की गई है या प्रतिकर निश्चित करने के लिये जिन सिद्धान्तों का उल्लेख किया गया है वे ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर का सुनिश्चयन करते हैं या नहीं। अतः पंडित नेहरू द्वारा पेश किये गये संशोधन में अन्तिम विनिश्चय सर्वोच्च न्यायालय के अधिकार में है और वह भली प्रकार यह घोषणा कर सकता है कि प्रतिकर निश्चित करने के लिये जिन सिद्धान्तों का संसद ने उल्लेख किया है वे कपटयुक्त हैं। इस प्रकार यह विनिश्चय करने के लिये कि 'ठीक और न्यायोचित प्रतिकर' क्या है सर्वोच्च न्यायालय न कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद अन्तिम प्राधिकार है। अतः आप देश के मुख्य उद्योगों का अर्जन नहीं कर सकते हैं और न उनका राष्ट्रीयकरण कर सकते हैं क्योंकि आप ठीक और न्यायोचित प्रतिकर नहीं दे सकते हैं। इसी कारणवश किसी अन्य प्रान्त में उदाहरणार्थ, राजस्थान में आप जमींदारी संपत्ति का भी अर्जन नहीं कर सकते हैं। यदि माननीय प्रधान मंत्री द्वारा प्रस्थापित रूप में यह अनुच्छेद पार किया जाता है तो उसका अर्थ यह होगा कि इस देश में पूंजीवादी प्रणाली को ज्यों का त्यों रहने दिया गया है। न हम मुख्य उद्योगों का राष्ट्रीयकरण कर सकते हैं और न सिवाय संयुक्तप्रान्त के हम ज़मींदारी पर ही अधिकार कर सकते हैं।

ऐसी स्थिति होने के कारण मुझे आश्चर्य है कि जवाहरलाल जी ने जिस रूप में इस अनुच्छेद को प्रस्थापित किया है उस रूप में यह सभा शायद ही इसे स्वीकार करे। अपने संशोधन में मैंने यह कहा है—

> "कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का अधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये नकदी या हुंडी या दोनों में उस राशि को देकर ही कब्जाकृत या अर्जित की जायेगी जो उस विधि में निर्धारित सिद्धान्त के अनुसार प्रतिकर के रूप में निश्चित की जाती है।"

अतः मेरे संशोधन के अधीन संपत्ति पर अधिकार करने के लिये दिये जाने वाले प्रतिकर को नियत करने के नियम संसद निर्धारित कर सकती है और किसी विशेष संपत्ति के लिये जो कुछ प्रतिकर संसद ठीक समझती है वह भी ठीक और न्यायोचित प्रतिकर होगा और हमारी संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद द्वारा जो विधि बनाई जायेगी वहीं अन्तिम होगी। संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न अपनी संसद द्वारा निर्धारित किये गये सिद्धान्तों का कोई सर्वोच्च न्यायालय अथवा कोई अन्य निकाय निर्णय करने नहीं बैठेगा।

मैं यह चाहता हूं कि सभा इस मूल प्रश्न पर विचार करे कि क्या वह इस बात के लिये तैयार है कि वह उस संसद की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता पर जिस संसद का निर्वाचन वयस्क मताधिकार के आधार पर होगा कोई और प्राधिकारी रखे।

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

क्या वह इस रीति से भावी संसद के हाथ बांधने के लिये तैयार है? हमारी वर्तमान संविधान-सभा की इस बात पर आलोचना की जाती है कि इसका निर्वाचन उन लोगों के परोक्ष मत के आधार पर हुआ है जिनका स्वयं निर्वाचन एक संकीर्ण मताधिकार न कि वयस्क मताधिकार के आधार पर हुआ था। नई संसद का निर्वाचन वयस्क मताधिकार द्वारा होगा और इस अनुच्छेद से हम उस भावी संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद को बंधन में डाल रहे हैं जिसका वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचन होगा और यह कहते हैं कि वह उन सिद्धान्तों के निश्चित करने के लिये अन्तिम रूप में प्राधिकृत नहीं होगी जिनके अनुसार राष्ट्रीय प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जित की जायेगी।

श्रीमान, मैं समझता हूं कि एक ऐसे मुख्य विषय पर जिस पर कि इस सभा में ही इतना तीव्र मतभेद है हमें भावी संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद को इस प्रकार बंधन में नहीं डालना चाहिये। मेरा संशोधन यथार्थ रूप में ससंद को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता की स्थिति में रहने देता है और वह उन सिद्धान्तों को निश्चित कर सकती है जिनके अनुसार प्रतिकर दिया जायेगा और उन सिद्धान्तों के सम्बन्ध में कोई भी यहां तक कि सर्वोच्च न्यायालय तक भी आपत्ति नहीं कर सकता है। कुछ विषयों में राष्ट्र के हित में बिना किसी प्रतिकर के दिये संपत्ति पर कब्जा करना पड़े और यह भी संभव हो सकता है कि कुछ विषयों में संसद पूर्ण प्रतिकर देना विनिश्चित करे, पर यह पूर्णतया संसद के निर्णय के अनुसार होगा और हमें विश्वास है कि संसद का निर्णय बिल्कुल ठीक होगा। प्रधान मंत्री के अनुच्छेद 24 के अनुसार संसद द्वारा निर्मित विधि पर सर्वोच्च न्यायालय द्वारा आपत्ति की जा सकती है और इस सम्बन्ध में न्यायालय का निर्णय अन्तिम होगा कि प्रतिकर तथा वे सिद्धान्त जिनके अनुसार प्रतिकर निश्चित किया जायेगा उचित हैं या नहीं। इस प्रश्न का निश्चय करना है कि हम उस रूप में अनुच्छेद 24 को रखें या किसी ऐसे अन्य रूप में जैसा कि मैंने प्रस्थापित किया है जिसके अनुसार संसद का विनिश्चय अंतिम है।

श्रीमान, इस संविधान निर्माण में मैंने सदैव बड़ी रुचिपूर्वक भाग लिया है और कुछ अनुच्छेदों का मैंने घोर विरोध किया है। अनुच्छेद 15 और अनुच्छेद 280 जैसे अनुच्छेदों को जिन्हें हम पार कर चुके हैं। मैंने पूर्णतया लोकतंत्र विरोधी कहा है और यह कहा है कि जो संविधान हमने निर्माण किया है उसमें ये कलंक के समान हैं। पर मैं समझता हूं कि इस अनुच्छेद को यदि उस रूप में पार किया जाता है जिस रूप में प्रधान मंत्री ने इसे रखा है तो हमारे संविधान में यह सबसे बड़ा कलंक होगा। यह मैं इसलिये कहता हूं कि सर्वप्रथम जैसा कि मैं कह चुका हूं यह संशोधन संसद की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता का हरण करता है और दूसरी बात यह है कि कांग्रेस इतने वर्षों से जिन सिद्धान्तों पर खड़ी रही है यह उनका खंडन कर देगा।

इस अनुच्छेद में एक बड़ी रोचक बात है जिसको मुझे बता देना चाहिये। इस अनुच्छेद के खंड (4) और (6) एक प्रकार से इस बात को स्वीकार करते हैं कि यदि खंड (2) को संयुक्तप्रान्त, बिहार और मद्रास में बड़ी-बड़ी जमींदारियों

का अर्जन करने के लिये लागू किया जायेगा। तो उसमें निर्धारित सिद्धान्तों के कारण बड़ी गड़बड़ और क्रान्ति फैल जायेगी। खंड (4) और (6) में यह कहा गया है कि इस संविधान के प्रारंभ पर जो अधिनियम और विधेयक पास हो चुके हैं या विधान-मंडलों के समक्ष लम्बित हैं उनके संबंध में सर्वोच्च न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी, पर अन्य विधेयकों और अधिनियमों के सम्बन्ध में आपत्ति की जा सकती है। अतः यहां तक कि जमींदारी संपत्ति के सम्बन्ध में भी विभेद है, वह जमींदारी संपत्ति जो अर्जित हो चुकी है या किसी लम्बित विधेयक के अधीन अर्जित होने वाली है और एतत्पश्चात् जो जमींदारी संपत्ति अर्जित की जायेगी इनमें विभेद है। और ज़मींदारी संपत्ति तथा औद्योगिक संपत्ति में भी विभेद है। और सभा को मैं यह बता दूं कि कांग्रेस ने सदैव विभेद का विरोध किया है।

माननीय प्रधान मंत्री से उनके भाषण में बार-बार संसद की अन्तिम सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्नता का उल्लेख सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ और फिर भी उन्होंने इस रूप में अनुच्छेद प्रस्थापित किया है जो उस संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता का हरण करेगा और यह संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता सर्वोच्च न्यायालय के उन चन्द न्यायाधीशों के हाथों में सौंप दी गई है जो संसद की समझी बूझी इच्छा को रद्द कर देंगे चाहे वे कितने ही योग्य हों। अब आइये हम यह देखें कि आखिर इससे लाभ किसको होगा? मैं कहता हूं कि लाभ केवल वकीलों को होगा, उन वकीलों को जो सर्वोच्च न्यायालयों में मुकदमे को लड़ेंगे और संपत्ति का अधिकांश भाग इन वकीलों की जेबों में जायेगा। यदि इस रूप में इस अनुच्छेद को पार किया जाता है तो यह वकीलों के लिये स्वर्ग तुल्य हो जायेगा।

जैसा कि मैंने कहा था कि कांग्रेस इतने वर्षों से जिन सिद्धान्तों पर खड़ी रही है यह उनका खंडन कर देगा ओर यह कांग्रेस के कई संकल्पों का विरोध करता है। यहां मैं राष्ट्रपिता महात्मा गांधी ने गोल मेज सम्मेलन में जो भाषण दिया था उसकी कुछ कंडिकायें उद्धृत करूंगा जिससे कि हमें यह विदित हो जाये कि उन्होंने क्या कहा था। उन्होंने कहा था:

> "यह विचार करना मेरे लिये सुखद है कि स्वतंत्र भारत अखिल विश्व को एक भिन्न प्रकार की शिक्षा देगा और संसार के समक्ष एक भिन्न प्रकार का उदाहरण प्रस्तुत करेगा। मैं यह नहीं चाहूंगा कि भारत पूर्णतया एकाकी जीवन बिताये जिसके कारण उसे सबसे पृथक् रहना पड़े और वह किसी व्यक्ति को अपनी सीमाओं में प्रवेश न करने दे अथवा अपनी सीमाओं के अन्तर्गत व्यापार न करने दे। मेरे मन में ऐसी बहुत सी बातें हैं जो मुझे स्थितियों का संतुलन करने के लिये करनी होंगी। संभव है अनेक वर्षों तक पद्दलितों को उठाने के लिये, गिरे हुओं को उस दलदल में से निकालने के लिये, जिसमें पूंजीवादियों ने, जमींदारों ने तथा तत्कथित उच्चतर वर्गों ने और बाद में अन्तिम तथा वैज्ञानिक रूप से अंग्रेज शासकों ने उन्हें फंसा दिया है, भारत विधान पारित करने में लगा रहे। यदि हम इन लोगों को उस दलदल में से निकालना चाहते हैं तो भारत की राष्ट्रीय सरकार का यह अनिवार्य कर्तव्य होगा कि वह अपने घर

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

को सुव्यवस्थित करने के लिये लगातार उन लोगों को अधिमान दे और उस भार से मुक्त करे जिसके नीचे वे दबे जा रहे हैं। और यदि भूमि के स्वामी, जमींदार, धनी व्यक्ति और वे लोग जो आज विशेषाधिकारों का उपभोग कर रहे हैं मुझे इस बात की चिन्ता नहीं कि वे चाहे अंग्रेज हों या भारतवासी। यदि वे यह देखते हैं कि उनके साथ विभेद बर्ता जा रहा है तो मैं उनसे सहानुभूति अवश्य रखूंगा पर उनकी मदद कर सकने पर भी मैं उनकी मदद नहीं कर सकूंगा क्योंकि इस कार्य में मैं तो उनकी मदद चाहूंगा और उनकी मदद के बिना उन लोगों को उस दलदल में से बाहर नहीं निकाला जा सकता है।

यदि आप चाहें, और यदि विधि द्वारा अछूतों की सहायता की जाये और मीलों राज्यक्षेत्र अलग नियत किया जाये, तो आप अछूतों की हालत देखिये। इस समय उनके पास कोई भूमि नहीं है, वे पूर्णतया तत्कथित उच्च वर्ग की और मैं तो यह भी कहूंगा कि राज्य तक की दया पर जीवन बिना रहे हैं। बिना शिकायत किये तथा बिना विधि की सहायता प्राप्त किये उनको एक क्षेत्र से निकाल कर दूसरे क्षेत्र में पटका जा सकता है। अतः विधान-मंडल का प्रथम अधिनियम यह होगा कि परिस्थितियों में थोड़ा बहुत संतुलन करने के लिये इन लोगों को स्वतंत्रतापूर्वक अनुदान दिया जाये।

यह अनुदान किसकी जेबों में से आयेगा? स्वर्ग से तो नहीं आयेगा। राज्य के लिये स्वर्ग धन की वर्षा नहीं करेगा। यह स्वाभाविक ही है कि वह धन धनिक वर्गों से जिसमें अंग्रेज भी शामिल हैं, प्राप्त होगा। क्या वे यह कहेंगे कि यह बर्ताव विभेदात्मक है? वे यह समझ सकेंगे कि उनके साथ यह विभेदात्मक बर्ताव नहीं है क्योंकि वे अंग्रेज़ हैं, उनके साथ यह विभेदात्मक बर्ताव होगा कि उनके पास धन है और औरों के पास नहीं है। अतः यह सघर्ष धनी और निर्धनों में होगा।

***अध्यक्षः** माननीय वक्ता को मैं बाधा देना नहीं चाहता हूं। पर वे जो इतने लम्बे उद्धरण को पढ़ रहे हैं उसमें मुझे कोई बल नहीं दिखाई देता है। इस समय हम जिस अनुच्छेद पर विचार कर रहे हैं उसके साथ यह किस प्रकार संगत है?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** मैं इस वाक्य को अभी समाप्त कर दूंगा। उसके बाद उसकी संगति सिद्ध करूंगा।

***अध्यक्षः** आपको पूरा भाषण न पढ़ना चाहिये, केवल उस विशिष्ट वाक्य को ही पढ़ देते।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेनाः** जी नहीं। वह भी आवश्यक था।

"अतः यह संघर्ष धनी और निर्धनों में होगा; और यदि किसी बात का डर है तो मुझे आशंका है कि यदि ये सब वर्ग उन लाखों निरीह लोगों पर बन्दूकें तान कर यह कहें कि 'जब तक आप हमारी संपत्ति और हमारे अधिकारों की प्रत्याभूति नहीं करेंगे तब तक आप अपनी सरकार नहीं बना सकेंगे।' तब तो राष्ट्रीय सरकारों की स्थापना नहीं हो सकेगी।"

इस उद्धरण की संगति यह है कि राष्ट्रपिता ने कहा है कि इन अछूतों, दलितों और गिरे हुओं को दलदल में से निकालने के लिये भारत परिस्थितियों का संतुलन करने के लिये विधान पारित करने में लगा रहेगा। उन्होंने कहा था कि राष्ट्रीय सरकार का पहला भार परिस्थितियों का संतुलन करना होगा। परन्तु पंडित जवाहरलाल नेहरू का यह संशोधन इन सब बातों को असंभव बना देता है। परिस्थितियों के संतुलन की कोई संभावना नहीं रही, क्यों बिना पूर्ण प्रतिकर दिये लोक प्रयोजनों के लिये हम किसी संपत्ति को नहीं ले सकते हैं। राष्ट्रपिता ने इसके लिये एक सूत्र दिया था। उन्होंने कहा था:

"मेरे पास एक और सूत्र भी है, जिसका जल्दी में मसौदा बनाया गया है क्योंकि जब मैं लार्ड रीडिंग और सर तेजबहादुर सप्रू के भाषण सुन रहा था उस समय मैंने उसका मसौदा बनाया था। वह वर्तमान अधिकारों के संबंध में है।

वैध रूप से अर्जित किसी वर्तमान हित में तथा जो सामान्य रूप से राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध नहीं है उस हित में बिना उन हितों के लिये प्रयोज्य विधि के अनुसार हस्तक्षेप नहीं किया जायेगा।"

वे गोल मेज़ सम्मेलन में हमारी ओर से उड़ रहे थे कि संपत्ति के प्रत्येक हक्क की जांच की जाये कि वह वैध है या नहीं। वे इस बात को देखने के लिये लड़ रहे थे कि जो संपत्ति अर्जित की गई है वह वैध रूप में अर्जित की गई है और वह राष्ट्र के हितों के विरोध में न थी। राष्ट्रपिता का यह विचार था। उन्होंने वास्तव में यह कहा था:

"यदि उन्हें कुछ रियायत मिली है जो इस कारण मिली है कि उन्होंने उस समय के पदाधिकारियों की कुछ सेवा की जिसके फलस्वरूप उन्हें कुछ मील जमीन मिल गई, ठीक है, पर यदि सरकार पर मेरा कब्जा होता तो मैं तुरन्त ही उस भूमि पर से उनका कब्जा छीन लेता। मैं इस बात का विचार न करता कि वे भारतीय हैं और उतनी ही तत्परता से मैं सर हूबर्ट कार और मि. वैन्यल से भी कब्जा छीन लेता चाहे वे कितने ही भले हों और चाहे मुझसे कितनी ही मित्रता रखते हों। विधि, चाहे कैसे भी व्यक्ति हों, उनका सम्मान करने वाली नहीं होगी।"

यदि उनको यह विदित हो जाता कि उन्होंने बिना किसी वैध अधिकार के संपत्ति अर्जित की है तो वे उससे कब्जा छीन लेने के पक्ष में थे। यथार्थतः मेरा संशोधन जिसे मैं बाद में पेश करूंगा वह सुझाव करता है कि देशभक्तों की जो संपत्ति जब्त की जा चुकी है वह उनको वापस कर दी जाये और उन लोगों की संपत्ति जिन्होंने केवल पदाधिकारियों की सेवा कर के प्राप्त की है वह उनसे छीन ली जाये। आपकी अनुमति से महात्मा गांधी ने आगे जो कुछ कहा उसको मैं उद्धृत करना चाहूंगा। उन्होंने कहा था:

"और फिर आपको 'राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध नहीं' होना है। मेरे विचार में कुछ एकाधिकार हैं, इसमें सन्देह नहीं उनको वैध रूप से अर्जित किया

[प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना]

गया है, जो राष्ट्र के सर्वोत्तम हितों के विरुद्ध स्थापित किये गये हैं। मैं आपको एक उदाहरण दूं जो आपके लिये प्रमोद का साधन होगा परन्तु वह स्वाभाविक आधार पर आश्रित है। इस एक अनोखी वस्तु को लीजिये जिसको नई दिल्ली कहा जाता है। उस पर करोड़ों रुपया खर्च कर दिया गया। मान लीजिये कि भावी सरकार इस निर्णय पर पहुंचती है कि यह देखकर कि हमारे पास यह एक अनोखी वस्तु है इसको कुछ लाभदायक रूप में बदल दिया जाये। कल्पना करिये कि पुरानी दिल्ली में प्लेग या हैज़ा हो रहा है.....

***अध्यक्ष:** श्री सक्सेना, मैं नहीं समझता हूं कि आपका यह सब उद्धृत करना ठीक है। आप जो कुछ कह रहे हैं उसको मैं नहीं समझा पाया हूं। क्या आप अपने संशोधन पर भाषण दे रहे हैं या क्या जो संशोधन पेश हो चुका है उसका आप विरोध कर रहे हैं या आप किसी अन्य बात का ही समर्थन कर रहे हैं?

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं यह सिद्ध करने के लिये यह उद्धृत कर रहा हूं कि महात्मा गांधी ने कहा था कि यदि संपत्ति वैध रूप से अर्जित की हुई नहीं है तो वे उसको छीनने के लिये तैयार हो जायेंगे।

***अध्यक्ष:** आपके संशोधन में तो कोई ऐसी बात नहीं कही गई है।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** मैं अपने संशोधन में कह चुका हूं कि सर्वोच्च न्यायालय के स्थान में संसद को ही वह विनिश्चय करने का अन्तिम प्राधिकार है कि प्रतिकर दिया जाये या नहीं। मेरे संशोधन और प्रधान मंत्री के संशोधन में यही अन्तर है। विधि अन्तिम वस्तु है। मेरे संशोधन के अनुसार अन्तिम निर्णायक संसद है। यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं कुछ पंक्तियां और उद्धृत करना चाहूंगा।

***अध्यक्ष:** मैं समझता हूं कि आपको समय का भी विचार करना चाहिये। जितना समय मैं किसी अन्य व्यक्ति को देता उससे अधिक समय मैं आपको दे चुका हूं। अच्छा हो यदि आप उद्धरणों को छोड़ दें और अपनी बात कहें।

***प्रो. शिब्बन लाल सक्सेना:** यदि आप मुझे आज्ञा दें तो मैं केवल दो पंक्तियां और पढ़ूंगा। महात्मा गांधी ने कहा था:

"यदि राष्ट्रीय सरकार इस परिणाम पर पहुंचती है कि वह स्थान आवश्यक है तो इस बात की चिंता नहीं कि किन-किन स्वार्थों का सम्बन्ध है उनसे कब्जा छीन लिया जायेगा। मैं आपको यह बात दूं कि बिना किसी प्रतिकर के क्योंकि यदि आप यह चाहते हैं कि यह सरकार प्रतिकर दे तो उसे एक से छीन कर दूसरे को देना होगा, और यह असंभव है।"

प्रतिकर देने के संबंध में राष्ट्रपिता ने यह कहा था।

मैं कांग्रेस के इन सिद्धान्तों का समर्थक हूं। समाजवादियों ने खड़े होकर इस अनुच्छेद की आलोचना की है कि वह लोकतंत्रात्मक नहीं है। मैं इस कारण इस संशोधन का विरोध करता हूं कि जीवन भर मैं जिस बात का समर्थन करता आया हूं और इन समस्त वर्षों में राष्ट्रपिता तथा कांग्रेस ने जिस बात का समर्थन किया उसका यह निराकरण है। प्रधान मंत्री के भाषण में मुझे वह ओज नहीं मिला जो बहुधा उनके भाषणों में हुआ करता है। यह स्पष्ट है कि उनके हृदय में उथल-पुथल मची हुई है और उन्होंने एक ऐसा संशोधन पेश किया है जिसमें उन्हें विश्वास नहीं है और मैं यह कहना चाहता हूं कि उनका संशोधन स्वीकार न किया जाये। सभी की स्वीकृति के लिये मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद-385 ।

(जैसे ही ब्रजेश्वर प्रसाद मंच की ओर बढ़े तालियां बजाई गईं।)

***एक माननीय सदस्यः** तालियां माननीय सदस्य को निमंत्रित करती हैं कि वे संक्षेप में अपना भाषण दें।

***अध्यक्षः** तालियां तुम्हें प्रसन्न करने के लिये हैं।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसाद** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि संशोधनों की सूची के संशोधन संख्या 720 के स्थान में यह संशोधन रखा जाये:

कि अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:

'24. (1) All private property in the means of production may be acquired by the Government of India.

(2) The President shall determine in each case, to what extent, if any, the owner whether a private individual, a State, a local self-governing institution or a company, shall be compensated.

(3) That within four years from the date of the commencement of this Constitution, the Union Government shall become the owner of all private property in land which is being used or capable of being used for agricultural purposes.....'"

[24. (1) उत्पादन के साधनों में समस्त निजी संपत्ति भारतीय सरकार द्वारा अर्जित की जायेगी।

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

(2) प्रत्येक विषय में राष्ट्रपति यह निश्चय करेगा कि उसके स्वामी को, चाहे वह कोई निजी व्यक्ति, राज्य, स्थानीय स्वायत्तशासी संस्था अथवा कंपनी हो, यदि प्रतिकर दिया जाये तो कितना दिया जाये।

(3) इस संविधान की प्रारम्भ तिथि से चार वर्षों के अन्तर्गत संघ सरकार उस भूमि रूपी समस्त निजी संपत्ति की स्वामिनी हो जायेगी। जिसका कृषि प्रयोजनों के लिये उपयोग हो रहा है अथवा हो सकता है....।]

आपकी अनुमति से मैं खंड (4) को अपमार्जित करना चाहता हूं।

4.....

".....(4) वयस्क मताधिकार के आधार पर बनी हुई मतदाताओं की सूची में के मतदाताओं की समस्त संख्या के 51 प्रतिशत द्वारा यदि अनुसमर्थित कर दिया जाता है तो इस अनुच्छेद के उपबन्धों में संशोधन हो सकेगा।"

क्या मैं अन्य संशोधन 387, 390, 391 को भी पेश कर सकता हूं?

***अध्यक्षः** मैं नहीं समझता हूं कि आप 391 पेश कर सकते हैं क्योंकि वह 385 के संगत नहीं है। मैं समझता हूं कि यह अच्छा होगा कि आप अपने एक संशोधन से ही संतुष्ट रहें और विषय से संगत रहें।

***श्री बी. दासः** अध्यक्ष महोदय, मैं निवेदन करता हूं कि यह संशोधन नियम विरुद्ध है क्योंकि समस्त वर्तमान विधियों का यह शून्यन करता है और प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये संकल्प का शून्यन करता है।

***अध्यक्षः** ये सब संशोधन मूल रूप में पेश किये गये अनुच्छेद के स्थान में अन्य अनुच्छेद रखने के लिये हैं जिस प्रकार से मूल रूप में निर्मित अनुच्छेद के स्थान में अन्य अनुच्छेद रखने का प्रधान मंत्री का संशोधन है।

***श्री ब्रजेश्वर प्रसादः** श्रीमान, आपके समक्ष मैं यह और प्रस्तुत करना चाहूंगा कि जो पद्धति आज हमने अंगीकार की है वह वह नहीं है जिस पर हम अब तक चलते आये हैं, क्योंकि डॉ. अम्बेडकर को ही अनुच्छेद 24 अथवा संशोधित रूप में कोई अन्य अनुच्छेद पेश करना था। जब मसौदा समिति की ओर से कोई अनुच्छेद पेश हो चुका है तो इस पर संशोधन पेश करने का अधिकार और किसी व्यक्ति को नहीं है।

श्रीमान, सभा के माननीय सदस्यों के ताली बजाने के लिये मैं उनका कृतज्ञ हूं। इस संशोधन को या इस अनुच्छेद के स्थान में दूसरा अनुच्छेद रखने के लिये जो मैंने यह प्रस्ताव पेश किया है वह कोई बढ़ चढ़कर बातें बनाने की भावना से नहीं है। मैं सादा विचारों का व्यक्ति हूं और मैं केवल एक बात जानता हूं कि इस प्रश्न पर कि संपत्ति का किस प्रकार विनियमन किया जाये कांग्रेस हाई कमान्ड ने निश्चय किया है और सदैव वे ही इस बात का निश्चय करेंगे और

इस प्रश्न पर विनिश्चय करने के लिये संसद के पास कोई शक्ति नहीं है। जब तक इस देश में निर्धनता तथा निरक्षरता है कोई भी संसद भारतीय राजनीति में कोई महत्वपूर्ण कार्य नहीं कर सकेगी। इसी कारण मैने 'संसद' शब्द को निकाल दिया है और इसके स्थान में 'राष्ट्रपति' शब्द रख दिया है। जब मैं 'राष्ट्रपति' कहता हूं तो मेरा आशय उस एक व्यक्ति राष्ट्रपति से नहीं है। मेरा आशय मंत्री मंडल के, कांग्रेस हाई कमाण्ड के, जिसमें पंडित जवाहरलाल नेहरू और सरदार वल्लभ भाई पटेल और अन्य लोग हैं, उन सब सदस्यों के परामर्श सहित राष्ट्रपति से है।

इस अनुच्छेद के पेश करने में मेरा केवल यह है कि प्रतिकर और न्याय्यता के प्रश्न पर जो वाद-विवाद उत्पन्न हो गया है उसका अन्त कर दिया जाये। मेरे मन में यह विचार बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि हम अपने संविधान में इन सिद्धान्तों को रखेंगे तो उसका परिणाम सामाजिक अन्याय होगा। परिणाम यह होगा कि समस्त देश में शीघ्र ही उथल-पुथल, अराजकता और गृह युद्ध फैल जायेगा। यह बात बिल्कुल स्पष्ट है कि जब तक यह संविधान प्रवृत्त हैं कोई भी सरकार, कोई भी लोकतंत्रात्मक सरकार—कांग्रेस सरकार का तो कहना भी क्या बिना प्रतिकर दिये संपत्ति पर अधिकार करने का साहस न करेगी। परन्तु मैं समझता हूं कि संकट के समय में जब कि देश में दुर्व्यवस्था और हत्या का संकट उपस्थित हो तो समाज के मूल आधार में ही परिवर्तन करने की शक्ति भारतीय सरकार के हाथों में सौंपी जाये जिससे कि राज्य की जड़ें मजबूत हो जायें। इस समय प्रतिकर और न्याय्यता के प्रश्न को अधिकतम संख्या के अधिकतम कल्याण में बोधक नहीं होने देना चाहिये। अतः इस विचार से मैंने इस अनुच्छेद को उस अनुच्छेद के स्थान में रखने के लिये पेश किया है।

मेरी यह धारणा है कि इस समय दिल्ली में लोगों के एक दल के हाथ में सब कुछ है जो अपनी उच्च बौद्धिक योग्यता तथा गुणों के कारण तथा अपनी भलमंसी और आचरण के कारण निजी संपत्ति के सिद्धान्त के विनियमन के प्रश्न पर सुदूरवर्ती तथा निष्पक्ष विचार करने में समर्थ हैं। इस तर्क पर जोर दिया जा सकता है कि हम प्रतिकर न दें और न्याय्यता स्वीकार कर लें तो देश में औद्योगिक उन्नति नहीं होगी। औद्योगिक उन्नति मेरे हृदय को बहुत प्रिय है परन्तु करोड़ों के कष्ट और भारत की भूख से पीड़ित जनता की उपेक्षा नहीं की जा सकती है। इस कारण मैं जनता को अधिमान देता हूं। मुझे इस बात की चिन्ता नहीं है कि कुछ पूंजी लगाने वालों को, विदेशी हों या भारतीय, लाभ या अवसर की हानि होगी क्योंकि किसी प्रकार से किसी परिस्थिति में भी कुछ मुट्ठी भर लोगों के लिये करोड़ों के हितों का बलिदान नहीं किया जा सकता।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व में दो या तीन तर्कों को और लूंगा। संसद के हाथों में शक्ति सौंपने के मैं विरुद्ध हूं क्योंकि जहां तक किसी संपत्ति के विनियमन के प्रश्न का संबंध है मैं समझता हूं कि एक ऐसे देश में जहां करोड़ों आदमी निरक्षर और निर्धन हैं वहां वयस्क मताधिकार के आधार पर निर्वाचित संसद अपने कृत्यों का निर्वहन नहीं कर सकेगी।

हमारे मनों में यह भी आशंका है कि भावी भारतीय संसद के अधिकांश सदस्य जमींदार श्रेणी में से आयेंगे जिसमें से प्रत्येक के पास अपनी-अपनी निजी संपत्तियां

[श्री ब्रजेश्वर प्रसाद]

होंगी। अतः उन लोगों के लिये जिनके पास अपनी निजी संपत्ति है इतना आदर्शवादी होना तथा इस वस्तुस्थिति पर निष्पक्ष विचार रखना बहुत कठिन होगा। मेरी यह धारणा है कि जमींदारी प्रथा समाजवाद और उन्नति के लिये सबसे बड़ी रुकावट है। मार्क्सवाद के इस सिद्धान्त में बहुत कुछ सत्य निहित है कि समाज के प्रभावशील दल के हाथों में राज्य विदोहन का एक यंत्र है। इसी लिये मैं कहता हूं कि संसद के हाथों में से शक्ति ले लेनी चाहिये और अपने दार्शनिक शासकों के हाथों में सौंप देनी चाहिये।

मैं यह जानता हूं कि यह संविधान इस देश का स्थायी संविधान नहीं होगा। अतः यह प्रश्न पूछा जा सकता है कि आप इस संविधान में ऐसे उपबन्ध क्यों रख रहे हैं जिनमें आन्तिरक मूल्य के केवल साधारण सिद्धान्त हों? मेरे विचार से यह संविधान दस वर्ष से अधिक नहीं ठहरेगा। इस धारणा पर विचार करते हुए मैं चाहता हूं कि सब शक्तियां अपने नेताओं के हाथ में सौंपी जायें।

इस प्रश्न को मैंने प्रान्तीय विधान मंडलों के क्षेत्र से बाहर रखा है क्योंकि मैं समझता हूं कि एकरूपता के लिये यह बहुत ही आवश्यक है कि प्रान्तीय सरकारों को कोई शक्ति नहीं सौंपी जाये। प्रान्तीय विधान मंडलों के सौंपे जाने के लिये यह शक्ति बहुत ही महत्वपूर्ण है। प्रान्तीय मन्त्रियों की बौद्धिक योग्यता के विरुद्ध मैं नहीं कर रहा हूं, पर प्रान्तीय मंत्री केवल प्रान्तीय समस्याओं पर ही विचार करने के आदी हो गये हैं अतः वे किसी बात पर अखिल भारतीय रूप में नहीं विचार कर सकते हैं। अतः मैं इस पक्ष में हूं कि यह शक्ति किसी प्रान्तीय सरकार के हाथ में न दी जाये।

अन्त में मेरी सम्मति यह है कि लोगों को केन्द्रीय सरकार के द्वारा अधिक न्याय प्राप्त करने की आशा है अपेक्षाकृत प्रान्तीय सरकारों के। अतः यदि केन्द्रीय सरकार को अनन्य शक्ति दे दी जाती है तो अल्पसंख्यक वर्गों की आशंकाओं तथा उन लोगों की आशंकाओं का निराकरण हो जायेगा जिनके पास कुछ निजी संपत्ति है। अतः मैं चाहता हूं कि यह शक्ति केन्द्रीय सरकार को सौंप दी जाये। कहीं एक खेर और कहीं एक पन्त होने से इस बात में कोई अन्तर नहीं आता है कि प्रान्तीय सरकारें जनता की विश्वासपात्र नहीं रहीं।

एक बात और कहने के पश्चात् मैं समाप्त कर दूंगा। मैं यह नहीं कहता कि जो कुछ मैंने कहा है उसकी पलक मारते ही पूर्ति हो जायेगी। मैं यह नहीं चाहता हूं कि निजी संपत्ति को 26 जनवरी, 1950 को मिटा दिया जाये। मैं यह कहता हूं कि यह शक्ति भारतीय सरकार के हाथों में सौंप दी जाये और इस ओर प्रगति के साधन पर विनिश्चय करना राष्ट्रपति तथा भारतीय सरकार पर छोड़ दिया जाये। मेरे इस संशोधन पर सभा द्वारा गंभीर विचार करने के लिये मैं जोरदार सिफारिश करता हूं। उत्तेजनावश मैंने यह संशोधन पेश नहीं किया है। संशोधन में व्यक्त किये गये विचारों का मैं कट्टर समर्थक हूं और लोगों को उससे सहमत या असहमत होने की पूर्ण स्वतंत्रता है।

***अध्यक्षः** दो और संशोधन हैं जिनमें संशोधित अनुच्छेद के स्थान में अन्य अनुच्छेद रखने का प्रयत्न किया गया है। मैं यह चाहूंगा कि पहले उनको पेश किया जाये।

***श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी** (मध्य प्रान्त और बरार : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के स्थान में यह अनुच्छेद रखा जाये:—

'24. (1) No person shall be deprived of his property save by authority of law. Private property.

(2) No property, movable, or immovable, including any interest in, or in any company owning any commercial or industrial undertaking, shall be taken possession of or acquired under any law unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired:

Provided that where an entire category of property, movable or immovable, is taken possession of or acquired under any law passed by Parliament or the legislature of a State for the distinct purpose and object of gradually and peacefully establishing a classless society in India, the principles of law authorising the taking possession of or acquisition shall in no case be called in question in any court:

Provided further that it shall be the natural right of every citizen whose property is taken possession of or acquired to get rectified in a proper court of law any wrong done to him in the process of execution of the law prividing for compensation.' "

[24. (1) कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। निजी संपत्ति

(2) कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, किसी विधि के अधीन कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित संपत्ति के लिये प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो।:

परन्तु जब स्थावर या जंगम संपत्ति के पूरे एक वर्ग को संसद या राज्य के विधान-मंडल द्वारा पारित किसी विधि के अधीन भारत में शनैः शनैः शांतिपूर्वक

[श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी]

एक वर्गहीन समाज बनाने के स्पष्ट प्रयोजन या उद्देश्य से कब्जाकृत या अर्जित किया जाता है तो कब्जाकृत या अर्जित करने का प्राधिकार देने वाली विधि के सिद्धान्तों पर किसी दशा में भी किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी:

परन्तु यह और भी कि प्रत्येक नागरिक को, जिसकी संपत्ति को कब्जाकृत या अर्जित किया जाता है, यह स्वाभाविक अधिकार होगा कि प्रतिकर के उपबन्ध करने वाली विधि के प्रवर्तन की रीति में यदि उसके साथ कोई त्रुटि हो गई है तो वह किसी समुचित न्यायालय में उस त्रुटि को ठीक करा ले।]

श्रीमान, माननीय पंडित जवाहरलाल द्वारा व्यक्त किये गये पर्यवेक्षण और विचारों के प्रति सचित सम्मान प्रकट करते हुए मैं इस अनुच्छेद के उस मसौदे से सहमत नहीं हूं जो उन्होंने पेश किया है। मेरे कारण ये हैं, सर्वप्रथम तो यह कि इस अनुच्छेद का नाम उपयुक्त नहीं है। हम मूलाधिकारों पर वाद-विवाद कर रहे हैं और इस विशिष्ट अनुच्छेद में हम निजी संपत्ति की उस सीमा का वर्णन कर रहे हैं जहां तक कि एक नागरिक उस पर अधिकार रख सकेगा। यह अनिवार्यत: संपत्ति अर्जन का विषय नहीं है और इस कारण इसका नाम "निजी संपत्ति पर अधिकार" या "निजी संपत्ति" के रूप में बदल दिया जाये।

इसके बाद यद्यपि प्रकट रूप में माननीय पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किया गया अनुच्छेद संपत्तियों में परस्पर विभेद नहीं करता है, परन्तु तथ्य का जो रूप है उसके अनुसार वह औद्योगिक संपत्ति और भूसंपत्ति में विभेद करता है। संपत्तियों में परस्पर यह विभेद, जो कि इस अनुच्छेद में है, मेरी दृढ़ धारणा है कि एक बहुत ही दु:खदायी वातावरण इस देश में, जोकि पहले से ही असंतोष से परिपूर्ण है, उत्पन्न करेगा। मैंने अपने संशोधन में इस पूरे अनुच्छेद को इस प्रकार से रखने का प्रयास किया है कि यद्यपि इस समय देश की बहुत ही गंभीर परिस्थितियों में हमारी स्थिति ऐसी नहीं है कि औद्योगिक तथा अन्य प्रकार की संपत्तियों का हम समाजीकरण कर सकें पर हम इस अनुच्छेद को पर्याप्त रूप से लचीला बना दें जिससे कि भविष्य में जब कभी अवसर मिले तो संसद औद्योगिक अथवा भूसंपत्ति के समाजीकरण करने का उपक्रम कर सके। पंडित जी ने जिस रूप में इस अनुच्छेद को हमारे समक्ष प्रस्तुत किया है उसके अनुसार उन प्रान्तों में भूसंपत्ति के सामाजीकरण का उपबन्ध है जो या तो आवश्यक अधिनियम पारित कर चुके हैं या 26 जनवरी, 1950 तक जब तक हम इस संविधान को प्रवर्तन में लाने की आशा करते हैं, अधिनियम पारित कर चुके होंगे या विधेयक पुर:स्थापित कर चुके होंगे।

परन्तु अन्य उन प्रान्तों के लिये, जो उपर्युक्त अवधि के अन्तर्गत जमींदारी उन्मूलन के लिये जिसके प्रति हम वचनबद्ध हैं, न विधेयक पेश कर सकेंगे अथवा न अधिनियम पारित कर सकेंगे, इस प्रस्थापित अनुच्छेद में कोई उपबन्ध नहीं है। संविधान का यह बहुत ही प्रमुख भाग है और यह ठीक कहा गया है कि यह अनुच्छेद इस संविधान का प्राण है अत: इस अनुच्छेद के महत्व को समझने के लिये हमारे पास उपयुक्त भूमिका होनी चाहिये।

हमारी जनता की आकांक्षाओं का प्रतीक कांग्रेस आज अकेली सबसे बड़ी संस्था है। उसने अपने उद्देश्य के रूप में इस देश में एक परस्पर सहयोगी संयुक्त वर्ग स्थापित करना स्वीकार कर लिया है, और यह परस्पर सहयोगी संयुक्त वर्ग भारत में एक वर्गहीन समाज की स्थापना के अतिरिक्त और कुछ नहीं है। अतः इस अनुच्छेद को उस दिशा का एक समुचित रूप में मार्ग प्रदर्शन करना चाहिये। पर जिस रूप में यह प्रस्थापित किया है उस रूप में मैं समझता हूं कि वह उस मार्ग का प्रदर्शन नहीं करता है। हमें यह भी स्मरण रखना चाहिये कि भारत में हमारी राष्ट्रीय अर्थव्यवव्था का स्वरूप अनुच्छेद 24 पर केन्द्रित होगा, इस कारण यदि हम निजी संपत्ति की परिभाषा करने में कोई भी त्रुटि करते हैं तो मैं समझता हूं कि हम एक ऐसा कार्य करेंगे जो भारत में एक वर्गहीन समाज बनाने के मार्ग पर अग्रसर होने में एक बहुत बड़े बाधक के रूप में आड़े आयेगा। अतः मैंने इस अनुच्छेद का इस प्रकार से संशोधन कर दिया है कि वह एक वर्गहीन समाज स्थापित करने के लोक बुद्धि की प्रतीक भारतीय संसद को उचित पथ प्रदर्शन कराने में सहायक होगा।

इसके साथ-साथ मैंने अपने संशोधन में यह उपबन्ध किया है कि संसद या राज्य विधान मंडल द्वारा निर्धारित सिद्धान्तों के प्रयोग में कोई त्रुटि हो गई है और किसी व्यक्ति के साथ कोई अन्याय हो गया है तो उस व्यक्ति को यह अधिकार होगा कि वह न्यायालय में उसके निराकरण कराने का प्रयत्न करे। हमें यह स्मरण रखना चाहिये कि उस महान व्यक्ति राष्ट्रपिता ने, जिसके बारे में यह ठीक कहा गय है कि उसने घूल से हमें मानव रूप दिया, उस रामराज्य का विचार और चित्र हमारी जनता के सामने प्रस्तुत किया था जिसका अर्थ एक साधारण व्यक्ति के लिये केवल राजनैतिक कल्याण ही नहीं था वरन् हमारे आर्थिक अभावों से छुटकारा भी था। अतः हमें सच्चाई के साथ यह देखना चाहिये कि हमारे संविधान में आर्थिक अभावों से इस छुटकारे की प्रत्याभूति एक सर्वसाधारण व्यक्ति को दी जाये।

यदि आप 'मूलाधिकार' संबंधी अध्याय में विभिन्न अनुच्छेदों के अन्य भिन्न-भिन्न उपबन्धों को देखेंगे तो आपको विदित होगा कि प्रत्येक मूलाधिकार के साथ कुछ न कुछ शर्त लगी हुई है। और उदाहरण के रूप में वाक् स्वातंत्र्य, संथा स्वातंत्र्य, वैयक्तिक स्वातंत्र्य में निर्धारित की गई प्रत्येक शर्त नागरिक की ओर एक कर्तव्य का संकेत करती है। इसी प्रकार से निजी संपत्ति के विषय में भी कुछ शर्त होनी चाहिये। और वह शर्त यह होनी चाहिये कि निजी संपत्ति केवल एक लोक न्यास है और संप्रदाय के कहने पर या सरकार के कहने पर वह संप्रदाय के लाभ के लिये होनी चाहिये।

कुछ लोग इस बात से सहमत हैं कि इस अधिकार को न्याय्य बना दिया जाये। इस विषय का ज्ञान न होने के कारण मैं न्याय्यता की पेचीदगियों को पूर्णतया नहीं समझ पाता हूं और मैं यह नहीं जानता हूं कि हमारा एक वर्ग इस बात से कैसे भयभीत है कि वयस्क मताधिकार द्वारा निर्वाचित हमारी जनता की ठोस इच्छा तथा हमारे नेताओं की बुद्धिमानी की प्रतीक संसद किसी उस संपत्ति का प्रतिकर देने में, जो जनता की सार्वजनिक भलाई के लिये कब्जाकृत या अर्जित की जाती है, न्याय के अतिरिक्त कुछ और भी करेगी। संपत्ति के संबंध में यूगोस्लाविया के

[श्री किशोरी मोहन त्रिपाठी]

संविधान की धारा 24 की ओर मैं आपका ध्यान आकर्षित करूंगा जिसमें यह कहा गया है:

"संप्रदाय के हित में तथा विधि के आधार पर न्याय की भावना में तथा सामाजिक संघर्ष को मिटाने के विचार से नागरिकों के परस्पर आर्थिक संबंधों में हस्तक्षेप करने का अधिकार और कर्तव्य राज्य का होगा।"

उसी संविधान में अनुच्छेद 37 में यह निर्धारित है:

"निजी संपत्ति की प्रत्याभूति की जायेगी। संपत्ति के निजी स्वामित्व द्वारा आरोपित आभारों को अभिज्ञात किया जायेगा। संपत्ति का उपयोग संप्रदाय के हित के लिये हानिकारक नहीं होना चाहिये। निजी स्वामित्व का क्षेत्र, सीमा और परिसीमा विधि द्वारा विनियमित की जायेगी।"

इसी प्रकार से आयरलैंड के संविधान में भी निजी संपत्ति के अधिकार पर परिसीमायें लगाई गई हैं। इन सब उदाहरणों में संप्रदाय के कहने पर तथा संप्रदाय की प्रतीक सरकार के कहने पर जब भी आवश्यक हो संपत्ति सामाजिक भलाई के लिये प्राप्त की जा सकती है।

कुछ लोगों द्वारा यह तर्क प्रस्तुत किया जाता है कि इस अनुच्छेद का मसौदा बनाने में इस महान कांग्रेस संस्था के सदस्यों ने उन वचनों को भंग कर दिया है जो जनता को दिये गये थे। वचन ये थे कि जब निजी संपत्ति को कब्जाकृत या अर्जित किया जायेगा तो उसके स्वामी को हम न्यायोचित ठीक-ठीक प्रतिकर देंगे। हम उन्हें प्रतिकर देने से विमुख नहीं होते हैं। पर यह भी स्मरण रखना चाहिये कि जनता के एक और महानतर वर्ग को, जन साधारण को हम यह वचन दे चुके हैं कि उनके लिये उत्तरोत्तर जीवन का उच्च स्तर बनाने का हम भरसक प्रयत्न करेंगे। हमें इस उद्देश्य की भी प्राप्ति करनी है। अत: हमारी यह जो आलोचना की जाती है कि जनता के एक वर्ग को हम किसी बात से वंचित कर रहे हैं वह पूर्णतया गलत है। विभिन्न वर्गों को दिये गये वचनों का हमें समायोजन करना पड़ेगा और इस संबध में यह स्मरण रखना चाहिये कि एक प्रगतिशील राष्ट्र को काल की आवश्यकता तथा मांग के अनुसार अपने लक्ष्य प्राप्ति के साधनों में बार-बार परिवर्तन करना होगा।

मुझे एक बात और कहनी है। विगत दो वर्षों से अर्थात् 15 अगस्त, 1947 से हमारा यह दु:खद अनुभव है कि इस देश के रूढ़गत स्वार्थों से युक्त व्यक्तियों की ओर सहयोगी भावना का हाथ फैलाने पर भी उन्होंने इसका स्वागत नहीं किया है। पूंजी लगाने में लोगों को झिझक है और राष्ट्र निर्माण में उद्योगों तथा वस्तु निर्माताओं ने अपना समुचित सहयोग नहीं दिया है। अत: अब यह वो समय है कि हम अपना ध्यान उस ओर से हटायें और जन साधारण से शक्ति प्राप्त करने का प्रयत्न करें। हमें ठीक प्रकार से अपनी नीति में परिवर्तन करना चाहिये।

इन चन्द शब्दों के साथ सभा की स्वीकृति के लिये मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***श्री एच.वी. कामतः** अध्यक्ष महोदय, इस अनुच्छेद 24 पर, जिसका हमारे राज्य के सामाजिक और आर्थिक ढांचे से मुख्य संबंध है, बड़ी व्याकुलता से अपने नाम के कई संशोधनों को पेश करने के लिये मैं खड़ा होता हूं।

श्रीमान, प्रधान मंत्री ने सभा में यह कहा है कि उसके समक्ष जो यह मसौदा है वह अनेक बड़े-बड़े वकीलों के लगातार एक बड़े प्रयत्न करने के फलस्वरूप बन पाया है। अतः मैंने स्वयं से यह प्रश्न किया कि इतने विशेषज्ञों द्वारा बनाये गये इस मसौदे के होते हुए भी क्या मुझे कुछ कहना चाहिये। पर मेरे विचार में यह आया कि वकील चाहे जितने ही महान क्यों न हों, यह संभव हो सकता है कि उनकी दृष्टि पर विधि संबंधी सूत्रों का पर्दा पड़ गया हो और वे कभी-कभी वृक्षों के कारण वन को भूल जाते हैं। अतः मैं संशोधन संख्या 386, 395, 403, 410, 418 और 431 पेश करता हूं:—

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में 'property' शब्द के पश्चात् 'except in the national interest and' शब्द प्रविष्ट कर दिये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'taken possession of or acquired' शब्दों के स्थान में जब कि वे दूसरी बार आते हैं 'to be taken possession of or acquired' शब्द रख दिये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'to be determined' शब्दों के पश्चात् अर्द्ध विराम और 'provided that such principles or such manners of determination of compensation shall not be called in question in any court' शब्द जोड़ दिये जायें।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) को अपमार्जित किया जाये।"

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(4) Any bill pending before the Legislature of a State at the commencement of the Constitution shall not, after its subsequent enactment, be called into question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.' "

[श्री एच.वी. कामत]

[इस संविधान के प्रारम्भ पर राज्य के विधान-मंडल में लम्बित किसी विधेयक पर उसके बाद में अधिनियम बन जाने पर किसी न्यायालय में इस बात पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्धों का उल्लंघन करता है।]

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'may within three months from such commencement be submitted by the Governor of State to the President for his certification; and thereupon, if the President by public notification so certifies, it' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।"

सभा के विचारार्थ इन अनेक संशोधनों को प्रस्तुत करते हुए, श्रीमान, क्या मैं कुछ बातें कह सकता हूं? प्रधान मंत्री ने सभा में यह बातें बताईं। सर्वप्रथम यह कि राज्य की नीति यह है कि प्रतिकर के बिना सम्पत्ति हरण न हो और दूसरी बात यह कि व्यक्ति का अधिकार किसी दशा में भी साधारण सम्प्रदाय के अधिकार या हितों पर अतिक्रमण नहीं कर सकता है। उन्होंने यहां तक कहा कि इन मूल नीतियों के होते हुए भी व्यक्ति की रक्षा करनी ही होगी। उन्होंने कहा कि कुछ चन्द लोग वास्तव में ऐसे हैं जो स्वयं अपनी रक्षा कर सकते हैं। मुझे आश्चर्य हो रहा था कि क्या इन चन्द व्यक्तियों की रक्षा का सिद्धान्त हमारे राज्य की आधारशिला होनी चाहिये। मुझे तो ऐसा प्रतीत होता है कि न्याय का हक तो चन्द व्यक्तियों को ही है, परन्तु राज्य को जिनकी रक्षा करनी है जिनको सहारा देना है उनकी संख्या बहुत बड़ी है। किसी दशा में, किसी रूप में, किसी परिस्थिति में उन चन्द व्यक्तियों के साथ ऐसा बर्ताव नहीं किया जा सकता जो कि एक महानतर समुदाय के हितों के लिये अहितकर हो। यदि यह नहीं माना जाता है कि न्याय तो चन्द व्यक्तियों को ही प्राप्त हो सकेगा पर रक्षा बहुतों की होगी तो श्रीमान, मैं समझता हूं कि हमारे इस देश में जो शताब्दियों की निर्धनता तथा पीड़ाओं से दबा पड़ा है ऐसे कवि, पैगम्बर और नेता पैदा होंगे जो लोगों से वही कहेंगे जो गत शताब्दी में इंग्लैंड की क्रान्ति में कवियों ने कहा था। उस कवि ने यह कह कर अंग्रेजों की भर्त्सना की थी:

"ऐ इंग्लैंड के मनुष्यों! तुम क्यों उन लार्डों के लिये हल चलाते हो जो तुम्हारा पतन करते हैं? क्योंकि परिश्रम करके तथा सावधान होकर ऐसे सुन्दर वस्त्र बुनते हो जिन्हें तुम्हारे ही आततायी पहनते हैं? इस गहरी निद्रा को छोड़कर अविजित संख्या में शेरों के समान उठो, ओस के समान अपनी शृंखलाओं को पृथ्वी पर झटक कर पटक दो, तुम बहुत हो, वे थोड़े हैं!"

अत: श्रीमान, बहुत विनम्र होकर मैं यह सुझाव दूंगा कि हमारे राज्य की आधारशिला यह होनी चाहिये कि रक्षा बहुतों की की जाये और न्यायपूर्ण व्यवहार चन्द व्यक्तियों के साथ किया जाये। हां, न्याय से किसी को वंचित नहीं किया जाये।

प्रधान मंत्री संपत्ति प्रणाली के विकास तक को खोजने लगे। मैं समझता हूं कि संपत्ति के बारे में विचार संपत्ति पर दैवी अधिकार अर्थात् निजी संपत्ति की अक्षुण्णता से लेकर श्री प्रोधोन के तत्कालीन विचार कि 'संपत्ति चोरी है' तक हैं संपत्ति के पक्ष तथा विपक्ष में जो आन्दोलन हुए हैं वे सब इसी संपत्ति संबंधी विचारधारा पर आश्रित हैं। एक ओर तो हमारे यहां संपत्ति पर दैवी अधिकार, निजी संपत्ति की अक्षुण्णता जैसे विचार हैं, पर इस सिद्धान्त का मेरे विचार से अब खंडन हो चुका है। यह सिद्धान्त मृतप्राय है, इसकी वही दशा हुई जो राजाओं के दैवी अधिकार की हुई। यदि संपत्ति पर किसी का भी अधिकार है तो मैं केवल यही कह सकता हूं कि संपत्ति पर मनुष्य का दैवी अधिकार नहीं है, वरन् सम्पत्ति पर ईश्वर का ही अधिकार है और इस प्रकार पृथ्वी पर जितनी उसकी सन्तानें हैं उन सबका अधिकार है। संपत्ति के कारण इन सब कष्टों से छुटकारा हो सकता था इन सब कष्टों को दूर किया जा सकता था, यदि मनुष्य केवल यह बात स्पष्ट रूप से समझ लेता कि संपत्ति का आशय यही है कि समस्त मानवता के हित में उसका ठीक-ठीक तथा बुद्धिमत्तापूर्ण उपयोग किया जाये।

इसी आधार पर महात्मा गांधी ने शिक्षा दी और अपरिग्रह के सिद्धान्त को जीवन में अपनाया कि संपत्ति स्वामियों को सम्प्रदाय के कल्याणार्थ संपत्ति का केवल न्यासी होना चाहिये। यदि हमारे देश में और विशेष कर संसार में संपत्ति के स्वामी यदि इस बात के अर्थ और भाव दोनों को मान लेते तो बहुत से कष्टों की रोकथाम हो जाती परन्तु लोगों ने अपनी मूर्खतावश महात्मा तथा अन्य पैगम्बरों की शिक्षा पर ध्यान नहीं दिया जो मानव इतिहास में उनसे पूर्व हुए थे। यदि ईषोपनिषद् का 'तेन त्यक्तेन भुंजीथा' के महान आदर्श का संपत्ति के स्वामी पालन करते तो संपत्ति के बारे में इतना झगड़ा तथा विवाद न होता। परन्तु श्रीमान, मानवता के भाग्य में यह नहीं बदा था। जैसा कि एक महान् इतिहास लेखक ने कहा है, मानवता का इतिहास मनुष्य के अपराधों, मूर्खताओं और अज्ञानताओं से भरा पड़ा है।

***अध्यक्षः** मनुष्य की अज्ञानताओं और मूर्खताओं का हम जिक्र न करें। विचाराधीन अनुच्छेद पर ही हम अपने विचार सीमित रखें।

***श्री एच.वी. कामतः** जिस प्रकार प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में संपत्ति के विचार के विकास के बारे में उल्लेख किया था उसी प्रकार से मैं उस विषय के बारे में अपने तर्कों का क्रमशः विकास कर रहा हूं।

श्रीमान, मेरे संशोधनों के बारे में, संख्या 386 का संशोधन बहुत ही स्पष्ट संशोधन है जिसमें मैंने यह उपबन्ध करने का प्रयत्न किया है कि सिवाय राष्ट्रीय हित के अन्य प्रयोजन के लिये सम्पत्ति अर्जित नहीं की जायेगी। प्रधान मंत्री ने कहा है कि चन्द लोगों की रक्षा करनी चाहिये। मैं इस बात से सहमत हूं कि चन्द लोगों को न्याय मिलना चाहिये अतः यदि हम विशिष्ट रूप से यह उपबन्ध करें कि राष्ट्रीय हित के लिये ही संपत्ति अर्जित की जायेगी तो हम यह प्रत्याभूति करते हैं कि चन्द व्यक्ति जो संपत्ति के स्वामी हैं उनके साथ न्यायपूर्वक व्यवहार किया जायेगा क्योंकि प्रधान मंत्री के अनुसार उनके ही विचारों के अनुसार चन्द व्यक्ति जनता के, समूचे राष्ट्र के हितों का अतिक्रमण नहीं कर सकते हैं। राष्ट्रीय हित

[श्री एच.वी. कामत]

में कोई भी सपत्ति अर्जित की जा सकती है और की जानी चाहिये। यह मेरे प्रथम संशोधन के संबंध में है।

मेरा दूसरा संशोधन संख्या 395 केवल शाब्दिक संशोधन है और उसे मैं उचित अवसर पर विचार करने के लिये मसौदा समिति की बुद्धिमत्ता पर छोड़ता हू।

संशोधन संख्या 403 एक मुख्य संशोधन है अतः उस पर कुछ बातें कहने के लिये मैं आपसे क्षमा याचना करता हूं। इस संशोधन में मैंने यह उपबन्ध करने का प्रयत्न किया है कि प्रतिकर देने और प्रतिकर नियत करने के सिद्धान्तों और निश्चय करने की रीति पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। जिस रूप में यह खंड था वह कुछ अस्पष्ट है यद्यपि प्रधान मंत्री ने यह कहा था कि अन्त में संसद और विधान मंडल ही सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न होंगे। पर मैं समझता हूं कि उन चन्द व्यक्तियों के लिये कोई ऐसी गुंजाइश नहीं रखनी चाहिये कि वे संप्रदाय के हित के विरुद्ध लड़ने का विचार अपने मस्तिष्क में लायें। इस प्रयोजन को विचार में रखते हुए मैं इस प्रश्न पर इस खंड को स्पष्ट करना चाहता हूं कि प्रतिकर के सिद्धान्तों तथा उसकी रीति पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। जो कुछ भी न्याय्य है जिस पर भी आपत्ति की जा सकती है वह केवल इन सिद्धान्तों का प्रयोग है। यदि कोई दुखी व्यक्ति यह समझता है कि सिद्धान्तों का गलत प्रयोग किया गया है या अन्यायपूर्ण प्रयोग किया गया है तो उसको न्यायालय जाने का और वहां विधि के प्रयोग पर आपत्ति करने का अधिकार है, परन्तु यदि संसद या विधान मंडल प्रतिकर का हिसाब लगाने के सिद्धान्त तथा उसकी रीति निर्धारित करते हैं उदाहरणार्थ, यह हिसाब फैलाते हैं कि कितने वर्षों में, नकद देकर या हुंडी के रूप में इत्यादि, इत्यादि तो इन सब बातों पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी। इस आधार पर नियत किया गया प्रतिकर अर्थात् यह कि इन सिद्धान्तों का प्रयोग न्याय्य बना दिया जाये। यूरोप में बने हुए अन्तिम संविधान पश्चिमी जर्मनी के वोन संविधान में इसी प्रकार एक खंड है। संपत्ति के प्रति इस खंड में न्याय्य भाग यह है कि "प्रतिकर की सीमा के संबंध में विवाद होने पर साधारण न्यायालय में अपील की जा सकती है।" मैंने अपने संशोधन संख्या 403 के द्वारा यह प्रयास किया है कि प्रतिकर के सिद्धान्त और रीति न्याय्य नहीं होंगे वरन् प्रतिकर की राशि या उन सिद्धान्तों के प्रयोग पर न्यायालय में आपत्ति की जा सकती है।

संशोधन संख्या 410 इस अनुच्छेद के खंड (3) से संबंध रखता है जो राज्य के विधान मंडल द्वारा पारित किसी विधेयक पर अपनी संपत्ति देने या न देने की शक्ति राष्ट्रपति को सौंपता है। मैं समझता हूं कि जहां तक इस संपत्ति का संबंध है जो राज्य के विधानमंडल के क्षेत्र के अधीन है अर्थात् जहां तक सप्तम अनुसूची की सूची 2 में अंकित सम्पत्ति का संबंध है, यदि राज्य उस संपत्ति को उस अनुच्छेद के अधीन अर्जित करना चाहता है तो राज्य द्वारा उस संपत्ति के अन्तिम रूप में अर्जित करने में कोई बाधा या रुकावट नहीं होनी चाहिये। यदि खंड (3) जिस रूप में है उसी रूप में स्वीकार किया जाता है तो मुझे भय है कि कहीं उसका परिणाम राज्य और समूचे संघ के लिये दुखदायी न हो। उदाहरण के रूप में मान

लीजिये कि इस अनुच्छेद के अधीन संघ के किसी अनुपूरक एकक ने संपत्ति अर्जित करने की विधि पारित कर दी पर कुछ हितों में अन्तर्ग्रस्त व्यक्तियों ने केन्द्र या राष्ट्रपति पर जो डालने का प्रयत्न किया और यदि दुर्भाग्यवश राष्ट्रपति भी उस उपक्रम के पक्ष में ऐसे अनेक कारणों से नहीं जिनको लेने की हमें कोई आवश्यकता नहीं है और विधान-मंडल द्वारा पारित विधि पर राष्ट्रपति अपनी अनुमति नहीं देता है तो राज्य और संघ सरकार में परस्पर घोर विरोध होना अवश्यम्भावी है और एक बार राज्य और संघ सरकार में फूट के बीज डल जाने पर मैं नहीं कह सकता हूं कि उसकी बेल कहां तक बढ़ेगी और राज्य और संघ में कब तक यह संघर्ष होता रहेगा। इस आकस्मिकता को दूर करने के लिये मैं चाहता हूं कि उस संपत्ति के संबंध में जो राज्य के क्षेत्र के अधीन है राज्य के विधान-मंडल को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न बना दिया जाये और यह चाहता हूं कि उसके प्रवर्तन में आने के पूर्व उस विधान पर राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक नहीं है। इसके बाद में संशोधन संख्या 418 पर आता हूं।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि वह न्यूनाधिक रूप में एक शाब्दिक संशोधन है।

***श्री एच.वी. कामतः** खंड (3) पर के पूर्व संशोधन पर मेरा संशोधन संख्या 418 एक आनुषंगिक रूप में है। खंड (3) पर के संशोधन में मैंने यह प्रयास किया है कि प्रवर्तन में आने से पूर्व राज्य विधान मंडल के विधेयक पर राष्ट्रपति की अनुमति की आवश्यकता अपमार्जित की जाये। और जैसा कि यहां इस संशोधन संख्या 418 में भी है, मैं खंड (4) को उसी आधार पर तथा इसी प्रभाव के लिये कि उसको प्रवर्तन में लाने के लिये राष्ट्रपति की अनुमति आवश्यक नहीं है, उसका फिर से मसौदा बनाना चाहता हूं कि जब उसको स्वाभाविक रूप में अधिनियमित किया जाता है तो उसको प्रभावी होना चाहिये और शेष खंड ठीक है।

इसके बाद मैं संशोधन संख्या 431 पर आता हूं। खंड (4) और (6) समान हैं सिवाय इसके कि खंड (4) लम्बित विधेयकों के संबंध का है और खंड (6) उन विधेयकों के संबंध का है, जिनको राज्य अधिनियमित कर चुका है और राज्य के विधान पर राष्ट्रपति के अनुमति संबंधी उपबन्धों के अपमार्जित करने का प्रयास करने वाला जो संशोधन खंड (3) पर मैंने पेश किया है वह दोनों खंड (4) और खंड (6) पर लागू होता है और इन खंडों में जहां-जहां राष्ट्रपति को रखा गया है वहां मैंने राज्य की विधि को प्रवर्तन में लाने से पूर्व राष्ट्रपति की अनुमति वाले उपबन्ध के अपमार्जन करने का संशोधन पेश किया है। यह संशोधन संख्या 431 के संबंध में है।

समाप्त करने के पूर्व मैं केवल एक बात पर जोर देना चाहूंगा। और वह यह है। अपने मूलाधिकार 9 में हमने यह उपबन्ध किया है कि मनुष्यों में परस्पर कोई विभेद नहीं होना चाहिये। केवल स्त्री और बच्चों के संबंध में उस अनुच्छेद पर एक विभेदात्मक परन्तुक है। मैं समझता हूं कि यह बहुत ही उचित होता कि हम किसी प्रकार के विभेद की भूसंपत्ति और औद्योगिक संपत्ति में व्यवस्था न करते (वाह, वाह), यदि हम यह निर्धारित करना चाहते हैं कि भूसंपत्ति का अर्जन न्याय्य नहीं है। मैं इस बात का स्वागत

[श्री एच.वी. कामत]

करता कि औद्योगिक संपत्ति तथा वाणिज्यिक पूंजी का अर्जन भी न्याय्य नहीं हो।

एक और बात इस संबंध में अनुच्छेद 13 के खंड (1) के उपखंड (च) में है जो संपत्ति के अर्जन, धारण और व्यय के अधिकार प्रदान करता है। उस पर एक परन्तुक (5) है "उक्त खंड के उपखंड (ख), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर साधारण जनता के हितों के अथवा किसी अनुसूचित आदिम जाति के हितों के संरक्षण के लिये युक्ति युक्त निर्बन्धन जहां तक कोई वर्तमान विधि लगाती हो वहां तक उस के प्रवर्तन पर प्रभाव अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट न डालेगी।" इन दो अनुच्छेदों को ध्यान में रखते हुए मैंने अनुच्छेद 24 के प्रस्थापित मसौदे के खंड (2) पर इस संशोधन का सुझाव दिया है। कहने का तात्पर्य यह है कि मैं यह विशिष्ट रूप से उपबन्ध करना चाहता हूं कि औद्योगिक संपत्ति के विषय में भी जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी हो, प्रतिकर देने के सिद्धान्त और रीति न्याय्य नहीं होंगे। यह भूसंपत्ति और औद्योगिक संपत्ति में अविभेद के सिद्धान्त के निकट होगा जिसके प्रति कुछ प्रान्तों ने कार्यवाही कर दी है। मैंने केवल प्रतिकर की राशि को न्याय्य बनाने का उपबन्ध किया है क्योंकि प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में यह कहा था कि कुछ चन्द व्यक्तियों की भी रक्षा करनी होगी और इस कारण मैं समझता हूं कि उनको जो रक्षा-कवच मिल सकता है वह प्रतिकर की राशि के संबंध में है। और किसी आधार पर वे न्यायालय नहीं जा सकते और प्रतिकर देने के सिद्धान्तों तथा रीति पर आपत्ति नहीं कर सकते।

अन्त में मैं भारत शासन अधिनियम का उल्लेख करूंगा जिसका अनुच्छेद 24 के प्रस्थापित मसौदे के खंड (6) के जिक्र है। भारत शासन अधिनियम की धारा 299 में की उपधारा (3) में यह निर्धारित है कि राज्य विधान-मंडल द्वारा पारित किये गये विधेयकों के लिये यह आवश्यक नहीं है कि उनको मुख्य राज्यपाल की अनुमति के लिये भेजा जाये। मुझे भय है कि राष्ट्रपति को अनुमति देने या न देने की जो शक्ति दी गई है उसके कारण भविष्य में कहीं विकट उलझनें न पैदा हो जायें और राज्य और संघ में विरोध न होने देने का एक मात्र मार्ग यह है कि राज्य के क्षेत्र में जो संपत्ति है उसे अर्जन करने की संपूर्ण शक्ति विधान-मंडल को दे दी जाये।

अतः सभा के गंभीर तथा परिपक्व विचारार्थ में अपने इन कई संशोधनों को प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री ब्रजेश्वर प्रसाद, आपके नाम से कई संशोधन है, पर यह नहीं प्रतीत होता कि वर्तमान वाद-विवाद तथा वर्तमान संशोधनों में वे किस प्रकार ठीक बैठेंगे। उनमें से कुछ वर्तमान संशोधन के संबंध में है जिसे प्रधान मंत्री ने पेश किया है; कुछ उन पहले संशोधनों के संबंध में हैं जिनको पेश नहीं किया गया। जो पहले संशोधनों के संबंध में हैं, उन्हें मैं नियम-विरुद्ध ठहराता हूं। अतः केवल

एक संशोधन संख्या 387 रहा जिसमें आप 'Law' शब्द के स्थान में 'President रखना चाहते हैं। आप इस विषय पर विस्तारपूर्वक बोल ही चुके हैं अतः मैं इसे पेश किये हुए रूप में माने लेता हूं।

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संस्था 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) में 'Law' शब्द के स्थान में 'President' शब्द रखा जाये।"

***प्रो. के.टी. शाह** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मेरे भी कई संशोधन हैं। क्या मैं उनकी संख्याओं की सूची आपको दूं?

***अध्यक्षः** मेरे पास सूची है।

***प्रो. के.टी. शाहः** ये संशोधन उन संशोधनों के स्थान में हैं जिनको मैंने मूल अनुच्छेद के लिये भेजा था और इस कारण वे पेश नहीं किये जायेंगे।

मेरा पहला संशोधन संख्या 388 है।

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) के अन्त में यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that no rights of absolute property shall be allowed to or recognised in any individual, partnership firm, or joint stock company in any form of natural wealth such as land, forests, mines and minerals, water of rivers, lakes or seas surrounding the coasts of the union; and that ultimate ownership of these forms of natural wealth shall always be deemed to vest in and belong to the people of India collectively; and that they shall be owned, worked, managed or developed by collective enterprise only, eliminating altogether the profit motive from all such enterprise.' "

[परन्तु किसी व्यक्ति, साझे का फर्म, या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के किसी प्रकार के प्राकृतिक धन जैसे भूमि, वन, खानें तथा खनिज पदार्थ, नदी, तालाब के और संघ के समुद्र तट के चहुं ओर समुद्र के जल पर निरपेक्ष संपत्ति के अधिकार न होने दिये जायेंगे और न अभिज्ञात किये जायेंगे; और इस प्रकार के प्राकृतिक धन का पूर्ण स्वामित्व भारत की जनता में सामूहिक रूप से निहित रहने दिया जायेगा और केवल सामूहिक उद्यम द्वारा ही, इन सब उद्यमों में लाभ की भावना का पूर्ण रूप से परित्याग कर, उन पर स्वामित्व या उनका संचालन या प्रबंधन या उनमें विकास किया जायेगा।]

[प्रो. के.टी. शाह]

इसके बाद संशोधन संख्या 394 है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में:—

(1) 'No property' शब्द के स्थान में 'Any property' शब्द रख दिये जायें।

(2) 'shall be taken' शब्द के स्थान में 'may be taken' शब्द रख दिये जायें।

(3) 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'subject to such compensation if any' शब्द रख दिये जायें।

(4) 'acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'acquired as may be determined by the principles laid down in the law for calculating the compensation' शब्द रखें जायें।

श्रीमान, यदि आप मुझे अनुमति दें तो मैं उस संशोधित खंड को पढ़ दूं जो इस उखड़ी हुई शैली से अधिक स्पष्ट होगा। संशोधित खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"Any property movable or immovable, including any interest in, or in any company owning any commercial or industrial undertaking, may be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition subject to such compensation, if any, for the property taken possession of or acquired as may be determined by the principle laid down in the law for calculating the compensation."

[कोई स्थावर या जंगम संपत्ति जिस के अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कम्पनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है तो कब्जाकृत या अर्जित की गई संपत्ति के विषय में विधि द्वारा प्रतिकर का हिसाब लगाने के लिये निर्धारित सिद्धान्तों द्वारा यदि कोई प्रतिकर है तो उसके असीर सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कल्लाकुल या अर्जित की जायेंगी।]

इसके बाद, श्रीमान–

(5) यह अन्त में जोड़ दिये जायें:

'(a) any public utility, social service, or civic amenity which has been owned, worked, managed or controlled, by any individual, partnership firm, or joint stock company for more than 20 years continuously immediately before the day this Constitution comes into force;' "

[परन्तु किसी लोक उपादेयता, सामाजिक सेवा या नागरिक सुविधा जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व 20 वर्ष से अधिक काल से स्वामित्व, संचालन, प्रबन्धन या नियंत्रण है।]

मैंने 'immediately' (सद्य) शब्द जोड़ दिया हे। इस संबंध में मेरे पास, संशोधन संख्या 490 है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी समय से नहीं बल्कि सद्य पूर्व।

इसके बाद, श्रीमान–

"(b) any agricultural land forming part of the proprietary of any land-owner, howsoever described, which has remained uncultivated or undeveloped continuously for ten years or more immediately before the day this Constitution comes into force;

"(c) any urban land, forming part of the proprietary of any individual partnership firm or joint stock company, which has remained unbuilt upon or undeveloped in any way for fifteen years or more continuously immediately before the day this Constitution comes into effect;

"(d) any agricultural land forming part of the proprietary of any landowner, howsoever described, which has remained in the ownership or possession of the same individual or his family for more than 25 years continuously immediately before the day when this Constitution comes into operation;

[प्रो. के.टी. शाह]

"(e) any mine, forest or mining or forest concession which has remained in the ownership or possession of the same individual, partnership firm, or joint stock company for at least twenty years immediately before the day this Constitution comes into operation;

"(f) any share, stock, bond, debenture or mortgage on any joint stock company, owning, working, managing or controlling any industrial or commercial undertaking which has been owned, worked, controlled or managed by the same joint stock company, or any combination or amalgamation of it with any other company for more than thirty years continuously immediately before the day this Constitution comes into operation;

or

which has paid in the course of its operations and existance in the aggregate, in the shape of dividend or interest, a sum equal to or exceeding twice the paid up value of its shares, stock, bonds or debentures;

or

whose total assets (not including goodwill) at the time of the acquisition by the State of any such undertaking are less in value than its total liabilities."

[(ख) कोई कृष्यभूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व 10 वर्ष या इससे अधिक समय तक अनजुती तथा अविकसित रूप में पड़ी रही हो;

(ग) कोई नगर में की भूमि जिस पर किसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का अधिकार हो और जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 15 वर्ष या इससे अधिक समय तक अनिर्मित तथा अविकसित पड़ी रही हो;

(घ) कोई कृष्य भूमि जो किसी जमींदार की संपत्ति का कोई भाग हो और जो इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार 25 वर्ष से अधिक समय तक उसी व्यक्ति या उसके कुटुम्ब के कब्जे में रही हो;

(ङ) कोई खान, वन या खनिज पदार्थ निकालने का कर्म या वन संबंधी रियायतें जो उसी व्यक्ति, साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी के स्वामित्व या कब्जे में इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व न्यूनातिन्यून 20 वर्ष तक रही हो;

(च) किसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी में, जो किसी ऐसे औद्योगिक या वाणिज्यिक उपक्रम की स्वामिनी, संचालिका, प्रबंधिका, या नियंत्रिका है, कोई अंश, श्रेष्ठि, हुंडी, ऋणपत्र या रहन जिस उपक्रम पर उसी संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी का या किसी अन्य कंपनी से मिलकर या उसमें विलीन होकर उनका स्वामित्व, संचालन, नियंत्रण या प्रबन्धन इस संविधान के प्रवर्तन में आने के दिन से सद्यपूर्व लगातार तीस वर्ष से अधिक काल तक रहा हो;

या

जो अपने प्रवर्तन तथा जीवन काल में लाभांश या ब्याज के रूप में अंश, श्रेष्ठि, हुंडी या ऋणपत्र के प्राप्त किये हुए भाग से औसतन दुगना दे चुकी हो;

या

किसी उपक्रम को राज्य द्वारा अर्जित करते समय उसकी सकल सम्पत्ति उसकी पूर्ण देयता से मूल्य में कम हो तो उन पर कोई भी प्रतिकर नहीं दिया जायेगा।]

इसके बाद संख्या 410 है जिसे कामत साहब पेश कर ही चुके हैं और उस पर मैं सभा का समय नहीं लेना चाहता हूं। इसके बाद संख्या 419 है। मैं पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) में—

(1) 'If any' शब्द के स्थान में 'any' शब्द रखा जाये।

(2) 'has, after it has been' शब्द के स्थान में 'may be' शब्द रखे जायें।

(3) 'received the assent of the President' शब्दों को अपमार्जित किया जाये।

(4) 'assented to' शब्द के स्थान में 'passed' शब्द रखा जाये।

[प्रो. के.टी. शाह]

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year' शब्दों के स्थान में 'at any time' शब्द रखे जायें।"

मैं यह प्रस्ताव भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'may within three months' शब्दों से लेकर 'Government of India Act, 1935' तक के शब्दों के स्थान में 'shall not be called in question in any Court on the ground that it contravenes any provision of this article' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, अब मैं उन संशोधनों पर भाषण देता हूं जिनको एक साथ लेने से एक रचनात्मक प्रस्थापना बन जाती है और माननीय प्रधान मंत्री द्वारा पेश किये गये संशोधन में निर्धारित नीति के स्थान में वह एक नीति के रूप में है। प्रधान मंत्री ने यह प्रस्थापना प्रस्तुत की है कि इस संविधान के अधीन बिना प्रतिकर के संपत्ति नहीं ली जायेगी। बिना किसी विभेद तथा रूपभेद के यदि यह सब संपत्ति पर लागू किया जाता है तो मुझे खेद है कि कि इस विचार में मैं साथ नहीं दे सकता हूं। क्योंकि सभी संपत्ति ऐसी नहीं हैं कि उसका वर्तमान स्वामी न्याय और नीति में प्रतिकर पाने के किसी अधिकार का दावा कर सके क्योंकि संपत्ति का उद्भव सदैव अनापत्तिजनक नहीं होता है।

एक महान फ्रांस के विचारक ने यह प्रश्न पूछा कि 'संपत्ति क्या है' और उसने यह कहकर उसका उत्तर दिया कि "वह चोरी है।" 'चोरी' शायद एक बहुत ही उदार सा शब्द है क्योंकि संपत्ति अधिकतर—यदि आप उसके उद्भव को लें तो बल, छल तथा हिंसा द्वारा अर्जित की गई है जिसको किसी भी नीति के अनुसार न्याययुक्त नहीं कहा जा सकता। जिन लोगों ने न मालूम कब से बल, छल अथवा हिंसा से अथवा किसी भी ऐसे ही प्रकार से संपत्ति अर्जित की है और इन बातों पर बिना विचारे ही आप यदि उनको प्रतिकर देने का प्रयास करते हैं तो मेरे विचार से आप उन नैतिक सिद्धान्तों का पालन नहीं कर रहे हैं जो हमारे इस संविधान को अनुप्राणित करते हैं।

इस वाद-विवाद में एक पूर्व वक्ता ने मनुष्यों पर स्वामित्व रखने के अधिकार अर्थात् दास प्रथा का उल्लेख किया था जिसका प्रचलन संयुक्त राज्यों के दक्षिणी राज्यों में था और जिसको मिटाने के लिये एक गृह युद्ध हुआ था। संपत्ति के इस रूप को मिटाना पड़ा था और मुझे पूर्ण विश्वास है कि बिना किसी प्रतिकर के। यह सच है कि ब्रिटिश सरकार ने अपने अधीन वैस्ट इंडीज उपनिवेशों में स्थित दासों के स्वामियों को प्रतिकर दिया था जबकि उन्होंने बिना किसी हिंसा

के दास प्रथा को मिटाने का निश्चय किया था। परन्तु नैतिक प्रस्थापना आपत्तिजनक नहीं होती है क्योंकि संयुक्त राज्य के विषय में, तथा अन्य देशों के उदाहरण भी दिये जा सकते हैं, जहां कि निकृष्ट कोटि की संपत्ति का उन लोगों ने प्रतिकर नहीं किया जिन्होंने उन संपत्ति के स्वामियों से उन संपत्तियों को लिया।

इस विषय में मैं सुझाव देता हूं कि आर्थिक और नैतिक रूप में कुछ अन्तर है। मैं यह कहने का साहस करता हूं कि संपत्ति का रूप नैतिक नहीं है। यह एक आर्थिक व्यवस्था है जिसका नैतिकता से घनिष्ट संबंध है। मैं तो यह कहूंगा कि आर्थिक व्यवस्था की नैतिकता से इसी अन्तर के कारण क्षति हुई है तथा संपत्ति को अक्षुण्ण मानने से और चाहे संपत्ति बल या छल किसी प्रकार से अर्जित की गई हो, चाहे उसका उपयोग हो रहा हो या दुरुपयोग या कोई उपयोग न हो उसका प्रतिकर मांगने से आर्थिक व्यवस्था की क्षति हुई है।

बाद में मैं तर्क के उस भाग पर आऊंगा जो बिना किसी शर्त के या मेरे संशोधन के अनुसार जिसमें किसी शर्तों के आधार पर प्रतिकर निर्बन्धित किया गया है, प्रतिकर देने का प्रयास करता है। परन्तु इस समय यह बताने से ही मेरा संबंध है कि लोक उपादेयता, सामाजिक सेवायें तथा नागरिक सुविधायें वर्तमान प्रणाली के अधीन निजी उद्यम के अन्तर्गत हैं। इन पर व्यक्तिगत रूप में व्यक्तियों का स्वामित्व है जिनको पर्याप्त लाभ होता है। ये उद्यम एकाधिकार के रूप में होते हैं या हो जाते हैं और उनको चाहे व्यक्ति या साझे की फर्म या संयुक्त श्रेष्ठि कंपनियां चलायें, वे मेरी सम्मति में, संप्रदाय से वह वस्तु छीनना चाहते हैं जो संप्रदाय की हैं और होनी चाहियें।

अतः ऐसे उद्यमों के लिये मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि, कोई प्रतिकर नहीं होना चाहिये। जिस संशोधन का मैंने सुझाव दिया है उसमें कहा गया है कि अब तक चाहे जो कुछ हुआ हो एतत्पश्चात् इस संविधान के अधीन किसी व्यक्ति में अथवा साझे की फर्म में अथवा संयुक्त श्रेष्ठि कंपनी में जिसका किसी लोक उपादयेता, सामाजिक सेवा या नागरिक सुविधा के संचालन, नियंत्रण, प्रबन्धन या प्रवर्तन से संबंध है, संपत्ति पर निरपेक्ष अधिकार न होने दिया जायेगा और न अभिज्ञात किया जायेगा, और भविष्य में इनका प्रवर्तन पूर्णतया लोकहित तथा लोक उद्यम के हेतु किया जायेगा जिसमें किसी प्रकार का कोई निजी लाभ नहीं होगा।

मुझे विश्वास है कि जो लोग मेरे जैसे विचार नहीं रखते हैं वे इस संबंध में मेरे संशोधन की वास्तविक शब्दावली की सावधानी से पूरी जांच करेंगे, शर्तें निर्धारित करने में मैं बहुत उदार रहा हूं। मैं फिर कहता हूं कि मैंने केवल भविष्य का ही निर्देश किया है और इस कारण अतीत में जो कुछ हुआ उस पर कोई विचार नहीं किया, यहां तक इन उपादेयता की सेवाओं तथा सुविधाओं पर भी कोई विचार नहीं किया। मैं समझता हूं कि भविष्य के बारे में भी स्वामित्व के निरपेक्ष अधिकार को किसी निजी रूप में, चाहे वह व्यक्ति हो, फर्म हो या कंपनी, संविधान के अधीन अभिज्ञात नहीं करना चाहिये। परन्तु एतत्पश्चात् उसका सामूहिक उद्यम द्वारा बिना किसी लाभ की भावना के सार्वजनिक हित के लिये संचालन करना चाहिये। मुझे विश्वास है कि इस भाग में उदारता का जो प्रमुख रूप है उसे स्वीकार तथा अभिज्ञात किया जायेगा और प्रधान मंत्री इस संशोधन को स्वीकार करने से सहमत होंगे।

[प्रो. के.टी. शाह]

खंड (2) के संबंध में मैंने सुझाव दिया है कि कोई निश्चित खंड होना चाहिये। खंड को निषेधात्मक रूप में आरम्भ करने के स्थान में, जिससे कुछ ऐसी ध्वनि सी निकलती प्रतीत होती है कि प्राथमिक अधिकार तथा अतिक्रमण करने का अधिकार व्यक्ति का है, मैं कदाचित् निश्चित रूप से राज्य या संप्रदाय के किसी संपत्ति अर्जन करने के अधिकार को निर्धारित करूंगा, यदि किसी प्रयोजन के लिये राज्य या संप्रदाय उस संपत्ति का अर्जन करना आवश्यक समझे। उसको 'लोक प्रयोजनों के लिये' शब्दों से सीमित कर दिया गया है। 'लोक प्रयोजनों' में मैं केवल बिना किसी पारिश्रमिक के तथा सार्वजनिक नागरिक सुविधाओं को ही शामिल नहीं करता हूं। उदाहरणार्थ, जब आप किसी विशाल नगर की गंदी आबादी को, हटाना चाहते हैं और उसमें जो व्यक्ति रह रहे हैं उनसे आप वह भूमि लेना चाहते हैं तो बगीचे या खुले स्थानों के रूप में आप लोक प्रयोजनों के लिये उसका अर्जन कर सकते हैं। मैं समझता हूं कि 'लोक प्रयोजन' की यह एक बड़ी ही विधिवत् श्रेणी होगी। परन्तु ऐसा लोक प्रयोजन भी हो सकता है जो केवल इसी प्रकार का न हो—खुले स्थान, बगीचे या बाग बनाने का ही न हो—स्कूल, चिकित्सालय व शरणगृह बनाने का ही न हो, वरन् उन भूमियों को अधिक मितव्ययी तथा अधिक लाभदायक बनाने का हो—मेरा अभिप्राय यह है कि व्यक्ति के लिये नहीं वरन् सम्प्रदाय के लिये।

लोक प्रयोजनों के लिये भूमि अर्जन, किसी भी लोक प्रयोजन के लिये किसी भी प्रकार की स्थावर या जंगम संपत्ति का अर्जन, जिसमें लोक हित के लिये उस उद्यम का संचालन भी है, मैं समझता हूं कि एक संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संप्रदाय का प्राकृतिक अधिकार है जिसको किसी ऐसे अपवाद के अधीन नहीं होना चाहिये जो खंड (2) के शब्दों में यदि निर्धारित नहीं तो निहित अवश्य है। अतः मैंने यह सुझाव दिया है कि कोई ऐसी संपत्ति, लोक प्रयोजन के लिये यदि कोई प्रतिकर है तो उसके अधीन परन्तु इस बात की परिभाषा न करते हुए कि 'लोक प्रयोजनों' का वास्तविक अर्थ क्या है, अर्जित की जा सकती है। प्रतिकर या हिसाब लगाने—वास्तव में तो प्रतिकर के मूल आधार पर ही मैं स्पष्ट शब्दों में चेतावनी देना चाहूंगा। न तो सब संपत्ति प्रतिकर के योग्य ही है और न इस संविधान में प्रतिकर के अधिकार को बिना किसी रूप भेद तथा शर्त के स्पष्ट रूप में अभिज्ञात ही करना चाहिये जैसा कि मुझे इस विचाराधीन खंड में प्रतीत होता है। और इसी कारण इस पर मैंने संशोधन पेश किया है। कोई प्रतिकर है भी या नहीं और बिना आपत्ति के प्रत्येक मामले में दिया जाना चाहिये, इस संबंध में मैं सन्देह के लिये स्थान अवश्य रखूंगा। इस प्रकार 'यदि कोई' शब्द में सन्देह प्रकट कर देने के कारण मैं और अधिक आगे बढ़ूंगा तथा यह कहूंगा और वह यह है कि स्थावर या जंगम संपत्ति के अर्जन करने के पश्चात् विधि उन सामान्य सिद्धान्तों का निर्धारण करे जिनके अनुसार प्रतिकर का हिसाब लगाया जायेगा और वह विधि प्रत्येक मामले में सही राशि निर्धारित करने का प्रयत्न न करे।

विधि में राशि निर्धारित करने पर आपत्ति करने के कारण और उन सिद्धान्तों को श्रेय देने के कारण, जिनके अनुसार प्रतिकर का हिसाब लगाया जायेगा, अब मैं आपको बताऊंगा। कदाचित् प्रश्नों का प्रभाव होने के कारण यदि विधान मंडल

द्वारा यह राशि निर्धारित की जाती है तो इस तथ्य के अतिरिक्त कि विधान मंडल वैयक्तिक अभिज्ञातों के अनन्त क्रम में संलग्न हो जायेगा, उस प्रत्येक मांग की आन्तरिक या सच्चे न्याय के आधार पर नहीं वरन् पक्षों की विचारधारा के आधार पर नियत किये जाने की अधिक संभावना है। मैं समझता हूं कि प्रत्येक संपदा, प्रत्येक अंश अथवा श्रेष्ठि अथवा ऋणपत्र, जैसी भी सूरत हो, उसके लिये प्रत्येक के ब्यौरे में विधान मंडल का जाना नैतिक रूप से गलत होगा। विधान मंडल के लिये यह ही सर्वोत्तम मार्ग होगा कि वह मोटे-मोटे सिद्धान्तों को निर्धारित कर दे जिनके अनुसार जहां प्रतिकर देना विनिश्चित किया जाये वहां उसका हिसाब लगाया जा सके और यह हिसाब उन न्यायाधिकारों द्वारा लगाया जाये जिनके संबंध में मैं सदैव यह आग्रह करता रहा हूं कि वे सरकार के किसी भी अन्य विभाग के चाहे वह कार्यपालिका का हो अथवा विधान मंडल का, प्रभाव या संपर्क से मुक्त रहने चाहिये। जिन सिद्धान्तों को आप अपने संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न विधान मंडल में निर्धारित करें उनके प्रशासन को आप न्यायपालिका को सौंप दें तो आप ठीक कार्य करेंगे।

यह कहने के पश्चात् मैं संपत्ति की कुछ श्रेणियां निर्धारित करता हूं जिनके लिये मेरे विचारानुसार कोई प्रतिकर न तो उचित ही है और न दिया जाना चाहिये, और जिस विषय को मैं प्रस्तुत करने का प्रयास कर रहा हूं उसके दोनों आर्थिक तथा नैतिक रूप में, मेरी धारणा है कि, ये बातें निहित हैं। अर्थात् किसी कृष्य संपत्ति को जो किसी प्रकार के स्वामित्व का भाग हो और कुछ वर्षों तक बिल्कुल ही उपयोग में न लाया गया हो, कुछ वर्षों तक उपेक्षित पड़ी रही हो, उसको बिना प्रतिकर के लिया जा सकता है। 'भूमि पूर्णतया अनुपयोगी रूप में पड़ी रही है अथवा जमींदारी समाज के लिये उपयोगी नहीं रही और इस कारण समाज के लिये अनुपयोगी होने के कारण, उपेक्षित रहने के कारण अथवा अदक्षता या उदासीनता के कारण संप्रदाय के लिये यह आवश्यक नहीं है कि वह स्वामी को प्रतिकर दे। अतः मेरा यह सुझाव है कि किसी संपत्ति के लिये जिसका ठीक-ठीक उपयोग किया जा सकता है, जिसके द्वारा संप्रदाय की उन्नति तथा संपत्ति में उन्नति हो सकती है, परन्तु जो स्वामी की उदासीनता, अदक्षता, उपेक्षा अथवा अन्य कारणों से इस प्रकार के उपयोगों में नहीं लाई गई है तो उसके स्वामी को कोई प्रतिकर नहीं मिलना चाहिये और इस प्रकार की संपत्ति पर यदि संप्रदाय कोई प्रतिकर देता है तो वह गलती करता है।

यही मैं उन लोग उपयोगिता तथा सामाजिक सेवाओं के बारे में कहता हूं जिनका अब तक निजी रूप से व्यक्तियों, आगमों या फर्मों द्वारा संचालन किया जाता था परन्तु सामान्य सिद्धान्तों के अनुसार जो उनके हाथों में न रहनी चाहिये थी। पर चूंकि वे उनके हाथों में रही हैं इस कारण हम उन्हें प्रतिकर दें, परन्तु ये उस काल तक से जिसका मैंने सुझाव दिया है या किसी ऐसे ही काल तक से अधिक काल तक के लिये उनके अधिकार में न रही हों। यहां भी मेरे तर्क का मूलभूत आधार यही है। जनता को लाभ से वंचित कर उन्होंने इस प्रकार के एकाधिकार से, इस प्रकार की लोक सेवाओं से जितना उचित होना चाहिये उससे कहीं अधिक लाभ उठा लिया है तथा रकम बना ली है; अतः ऐसी सेवाओं के लिये प्रतिकर की मांग करने का उन्हें कोई अधिकार नहीं है। जिस काल तक वे

[प्रो. के.टी. शाह]

इसको धारण किये रहे हैं यदि वह उस काल से अधिक है जिसका मैंने उल्लेख किया है तो धारणा यह की जाती है कि उनको आवश्यकता से अधिक प्राप्त हो चुका। अत: विधि या नीति या अर्थव्यवस्था किसी आधार पर भी उनके लिये प्रतिकर उचित नहीं है और न उनको दिया जाना चाहिये।

इस प्रकार से नगर को भूमि के संबंध में भी जिसको अधिकतर केवल इस आशा में अपने पास रहने दिया जाता है कि आबादी के बढ़ने से सामाजिक सेवाओं और लोक उपयोगिता में प्रगति होने से भूमि का मूल्य बढ़ जायेगा। लोग उस भूमि पर और अधिक पूंजी नहीं लगाते हैं, वरन् तब तक प्रतीक्षा करते हैं जब तक कि सामाजिक बलों के संयोग तथा प्रवर्तन से उस भूमि का मूल्य नहीं बढ़ जाता है। वे केवल प्रकृति की शक्तियों का उन भूमियों पर प्रभाव पड़ने देते हैं अत: उनको कोई प्रतिकर नहीं देना चाहिये। मैं समझता हूं कि वे समाज के प्रति दोषी हैं और यह ठीक संप्रदाय के अधिकार की बात है कि उत्पादन के मुख्य साधनों को अपने अधिकार में करने और उनमें उन्नति न करने तथा उनको उपयोग में न लाने के कारण संप्रदाय उनसे समाज के प्रति दोषी के रूप में व्यवहार करे। अत: इस प्रकार के असामाजिक अथवा यहां तक कि समाज विरोधी व्यवहार के कारण प्रतिकर मांगने का उन्हें कोई हक्क नहीं है।

अब मैं अन्य प्रकार के प्राकृतिक धन को लेता हूं जैसेकि खानों तथा खानों के लिये रियायतें जो कि एकाधिकारों के रूप में है। ये प्रकृति की देन है और यह संप्रदाय की वस्तु है, परन्तु संप्रदाय से छीन कर उसे निजी व्यक्तियों को दे दिया गया है—इससे अधिक तीखे शब्दों का प्रयोग में नहीं करूंगा। यदि हमारी विवशता या विदेशियों के राज्य के कारण यदि ये चीजें व्यक्ति के हाथों में पड़ गई हैं तो हमें ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती कि हम इस लोक अधिकार के साथ यह जो अन्याय हुआ है, उसको जो बलात् कर दिया है, उसे क्योंकर अभिज्ञात किया जाये। जितने वर्ष मैंने कहे हैं यदि उतने समय के लिये उसको चला लिया गया है तो जिन लोगों का उन पर अधिकार रहा है उन्होंने पर्याप्त मात्रा से अधिक धन कमा लिया है अत: चाहे वे कोयले की खान वाले हों या लोहे की खान वाले हों या सोने की खान वाले हों वे और अधिक प्रतिकर की मांग नहीं कर सकते हैं।

प्राकृतिक धन के इन रूपों को छोड़कर अब मैं आगे बढ़ता हूं—औद्योगिक और वाणिज्यिक उपक्रम जो अपने ही रूप में भूमि, खानों या वनों जैसे उत्पादनों के मुख्य साधनों से कम दोषपूर्ण नहीं है। उस समय प्रचलित अर्थव्यवस्था के कारण ये भी निजी व्यक्तियों के हाथों में चले गये हैं और अब शिकायत करना बहुत अबेर की बात हो गई है। पर वे चल रहे हैं और जो वर्षों से चल रहे हैं उनमें बहुत फायदा हो रहा है; इनको प्रतिकर मांगने का हक्क नहीं होना चाहिये क्योंकि उन्हें काफी मिल चुका है।

मैंने ये तीन श्रेणियां निर्धारित की हैं सर्वप्रथम वे जिनको औसतन उनके अंश पूंजी या ऋण पत्रों या श्रेष्ठि या जो कुछ भी हो उसका दुगना प्राप्त कर चुके हैं और इस प्रकार इतने वर्षों में उन्होंने अपनी लगाई हुई रकम पा ली है, अत:

यह आवश्यक है यह ठीक तथा न्याययुक्त है कि संप्रदाय को उनके उद्यम पर अधिकार करने दिया जाये और वह उसका इस प्रकार संचालन करे जिस प्रकार से राष्ट्र के लिये एक उचित रूप से सामंजस्यपूर्ण तथा योजित अर्थव्यवस्था के अनुसार उसका संचालन होना चाहिये और फिर वे लोग इसे पूरी अवधि अर्थात् 30 वर्ष से चाहे लाभ सहित अथवा लाभ रहित रखे हुए हैं उन्होंने अपने आपको आवश्यकता से अधिक अक्षय तथा अनुपयोगी सिद्ध कर दिया है, अतः वे इस संपत्ति को अपने अधिकार में बनाये रखने के योग्य नहीं हैं। अतः उनको अधिकार च्युत कर देना चाहिये। अन्य लोगों को जितना धन उन्होंने लगाया है उससे कहीं अधिक, बहुत अधिक प्राप्त हो चुका है, अतः और अधिक प्रतिकर का उन्हें कोई हक्क नहीं है। खान संबंधी कारखानों तथा मूलभूत उद्योगों संबंधी जैसे कि लोहा, इस्पात, महाजनी तथा बीमा व्यवसाय के मैं उदाहरण नहीं देना चाहता हूं जिन्होंने पिछली पीड़ी या इससे भी अधिक समय से विशेषकर जब से कि स्वदेशी आन्दोलन चला बहुत अधिक लाभ तथा अधिक धन कमा लिया है और यह मान लेना चाहिये कि उन्होंने अपनी लगाई हुई रकम से अधिक रकम प्राप्त कर ली है, तो इन मामलों में, विशेषकर उनमें जो देश की उन्नति के लिये मूलभूत रूप से आवश्यक हैं, किसी कृत्रिम मूल्य पर प्रतिकर, देना, मैं निवेदन करता हूं कि पूर्णतया अनुचित है और न दिया जाना चाहिये। अतः मैंने इस संशोधन द्वारा यह सुझाव दिया है कि इस प्रकार की संपत्ति के लिये कोई प्रतिकर न दिया जाये।

अन्त में औद्योगिक तथा वाणिज्यिक उपक्रमों के लिये, उन उपक्रमों के लिये जिनका देना पावना आपस में सम नहीं है, जिनका पावना देने से बहुत कम है और इस कारण वह सदैव घाटे का व्यवसाय है। तो ऐसे व्यवसायों पर प्रतिकर देना व्यर्थ के कार्य, अतिव्ययी तथा अमितव्ययी कार्य संचालन पर किश्त देना है अतः प्रतिकर नहीं दिया जाना चाहिये। कई बार राज्य ने पूर्वकाल में उन उद्यमों पर अधिकार दिया है जो दो या तीन या चार वर्ष पहले से अपने साधनों को इस प्रकार से नष्ट कर रहे थे कि वे अपने व्यवसाय को एक अनोखा सा असंभव रूप दे रहे थे। मैं विशेषकर कुछ रेलमार्गों के बारे में कह रहा हूं जिन पर राज्य को अधिकार करना पड़ा था और जो करार की शर्तों के अनुसार इस प्रकार से संचालित हो रही थीं कि उनसे जो पावना होता था वह उसे देने से बहुत कम होता था जो हमें प्राप्त होता था। ऐसे किसी विषय में, मैं निवेदन करता हूं कि केवल इस आधार पर प्रतिकर देना अनुचित, अबुद्धिमत्तापूर्ण, अमितव्ययी तथा नीति विरोधी है कि वह घाटे का व्यवसाय है अथवा यह कि किसी प्रतिकर के लिये उसके स्वामियों ने अपने आपको सर्वथा अक्षय तथा अयोग्य सिद्ध कर दिया है क्योंकि केवल अपनी ही असावधानी के कारण के उस व्यवस्था को चलाने में असफल रहे।

अन्य संशोधन जो मैंने पेश किये हैं वे प्रक्रिया संबंधी हैं, अतः उन पर मैं सभा का बहुत अधिक समय नहीं लूंगा। मैं नहीं समझता हूं कि उदाहरण के रूप में राज्य के मुखिया और विधानमंडल में किसी ऐसे संघर्ष के लिये गुंजाइश छोड़ना वांछनीय है जिसे कि मिटाया जा सकता है; अतः खंड (3) जिसमें यह सुझाव दिया गया है कि इस प्रकार के प्रत्येक विधेयक को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये रक्षित रखा जाये और उसे महत्व का मद बनाया जाये, मेरी सम्मति में अबुद्धिमत्तापूर्ण है और इस कारण इसको निकाल देना चाहिये। इसी कारण मैंने इस खंड को अपमार्जन करने का सुझाव दिया है।

[प्रो. के.टी. शाह]

इसी प्रकार से लम्बित विधेयकों को अथवा संविधान के प्रवर्तन में आने से एक वर्ष पूर्व या कितने ही समय पूर्व पारित किये गये विधेयकों को, मेरी सम्मति में, इस देश के सम्पूर्ण प्रभुत्व संपन्न प्राधिकारी की स्वीकृति या अनुमति के लिये रक्षित रखना आवश्यक नहीं होना चाहिये और यथा स्थिति केन्द्रीय प्राधिकारी, राष्ट्रीय प्राधिकारी तथा स्थानीय या राज्य प्राधिकारी में परस्पर एक प्रकार का वैमनस्य उत्पन्न नहीं होने देना चाहिये। मुझे विश्वास है कि संक्षेप में ये जो बातें मैंने प्रस्तुत की हैं उनको सभा की स्वीकृति प्राप्त होगी और मेरे ये संशोधन स्वीकार किये जायेंगे।

***श्री जदुवंश सहाय** (बिहार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2), (3), (4), (5) और (6) को अपमार्जित किया जाये।"

सदस्यों को इस समय तक मेरे इस संशोधन के पेश करने का न्याययुक्त आधार स्पष्ट हो गया होगा। मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि हमारे समक्ष जिस रूप में इस अनुच्छेद का मसौदा प्रस्तुत है वह विचारों की अवस्था तथा अस्पष्टता का एक बहुत ही आश्चर्यजनक उदाहरण है। देश की संपत्ति से सम्बन्धित इस प्रकार के महत्वपूर्ण तथा प्रमुख विषय पर संभवत: आपको इस प्रकार के गड़बड़ विचारों का संघर्ष कहीं नहीं मिलेगा। इस महान निकाय के रूप में भावी विधान-मंडल के लिये तथा इससे देश की आगे आने वाली संतति के लिये हम संपत्ति की नींव रखने जा रहे हैं, पर मैं यह निवेदन करने का साहस करता हूं कि इस कार्य में हम पूर्णतया असफल रहे हैं। इस सभा के सदस्यों को यह स्पष्ट हो गया होगा कि इन दो परस्पर विरोधी विचारधाराओं में समझौता करने का ज्यों ज्यों अधिक प्रयास किया गया है त्यों त्यों ही अधिक अस्पष्ट यह मसौदा होता गया। आप जानते ही हैं कि संपत्ति का प्रश्न केवल इस देश का ही नहीं वरन् अन्य देशों के ध्यान को भी आकर्षित कर रहा है। कई देशों ने भूमि संबंधी तथा उद्योग संबंधी सुधारों ने शताब्दियों पुरानी संपत्ति की परिभाषा का पूर्णतया खंडन कर दिया है। हमसे यह आशा की जाती थी कि कम से कम करोड़ों व्यक्तियों पर प्रभाव डालने वाले इस विषय पर देश की भावी आर्थिक व्यवस्था पर प्रभाव डालने वाले इस विषय पर हम संपत्ति विषयक नीति की स्पष्ट शब्दों में व्यंजना करेंगे। पर हम यह देखते हैं कि इस मसौदे पर किसी वर्ग में भी विश्वास की भावना जाग्रत नहीं हुई है।

उद्योगपतियों और पूंजीवादियों को लीजिये। वे इससे संतुष्ट नहीं हैं। बड़े-बड़े जमींदारों को लीजिये। वे इससे संतुष्ट नहीं हैं। जहां तक करोड़ों देशवासियों का संबंध है यदि इस संविधान के मसौदे पर आपके समक्ष अपने भाव प्रकट करने की शक्ति उनमें होती तो वे यही कहते कि वे इससे संतुष्ट नहीं हैं। जिन लोगों के नाम से हम यहां आये और इसमें कोई संदेह नहीं कि उन्हीं के कारण हम

यह संविधान बना रहे है—उनको हम क्या दे रहे हैं? मैं इस विवाद में नहीं पड़ूंगा कि इस अनुच्छेद में जैसे प्रतिकर का उपबन्ध किया गया है वह पूंजीवाद की उस उन्नति का निराकरण कर सकता है या नहीं जो इस देश में इतनी शीघ्रता के साथ हो रही है और जिसका देश की भावी राजनैतिक तथा आर्थिक तथा अन्य प्रकार की उन्नतियों पर अवश्य प्रभाव पड़ेगा।

इतना कहना पर्याप्त होगा कि संपत्ति के प्रति विचारधारा बदलती रही है। संसार ही परिवर्तनशील है। शासक के दैवी अधिकार से हम अब जनता की संपूर्ण प्रभुत्व संपन्नता तक आ गये हैं। परन्तु जहां तक संपत्ति के प्रश्न की वास्तविकताओं का संबंध है हमारे विचारों में परिवर्तन नहीं हुआ है। क्या हम भविष्य के लिये यह आशा बंधा रहे हैं कि जनता के हित के लिये इस देश में उद्योग का राष्ट्रीयकरण या सामाजिककरण होगा? नहीं। यह संविधान इस प्रकार की कोई आशा नहीं बंधाता है; बल्कि भावी संतति को, भावी विधान निर्माताओं को वे जिस उद्योग का राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं उसके लिये पूर्ण प्रतिकर देने के लिये बाध्य करता है।

इस अनुच्छेद से किसी के मन में भी किसी प्रकार का उत्साह नहीं हुआ है। जहां तक विधेयकों का संबंध है हमें क्या मिलता है? वहां गड़बड़ी का साम्राज्य है क्योंकि केवल एक प्रान्त में हम यह देखते हैं कि वहां जो विधेयक लम्बित है उसको यहां अभिज्ञात किया जा रहा है। क्या संविधान के बनाने वालों का यह कर्तव्य है कि वे उन विधेयकों पर विचार करें जो लम्बित हैं, जो अभी प्रवर समिति को नहीं पहुंच पाये हैं। जहां तक संशोधनों का संबंध है मैं यह देखता हूं कि सर्वत्र दुर्व्यवस्था और गड़बड़ का राज्य है। अन्य प्रान्तों पर क्या प्रभाव होगा? संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बिहार को छोड़ दीजिये। आसाम, बंगाल तथा मध्य प्रान्त तक के मार्ग प्रदर्शन के लिये आप क्या नीति निर्धारित कर रहे हैं जहां कि निकट भविष्य में ही जमींदार का उन्मूलन करना पड़े? क्या उनको प्रतिकर देने के लिये कहा जायेगा या क्या उनकी खंड (4) और (6) के अधीन रक्षा की जायेगी?

आपसे मैं इस बात कर विचार करने के लिये निवेदन करूंगा कि समस्त संविधान में यही अनुच्छेद सबसे अधिक महत्वपूर्ण है और इस सभा के सदस्यों की परख की यही एक कसौटी है। हम असफल हो चुके हैं क्योंकि जिस रूप में हमने प्रत्येक बात को लिया है उसमें हम उलझनों के शिकार हो गये हैं। जब हमारे समक्ष समस्यायें खड़ी होती हैं तो या तो हम उनसे कतराते हैं या हम दो भिन्न-भिन्न रूप में उनका निर्वचन करते हैं। इस विषय पर दो विचारधारायें हैं और उनमें से एक यहां होनी चाहिये—या तो प्रतिकर होना चाहिये या नहीं। यह कहना बिल्कुल ही अलग है कि अपने देश की वर्तमान स्थिति में, देश के वर्तमान संकट में हमें इस रूप में कार्य करने में अग्रसर नहीं होना चाहिये कि ऐसा विधान न हो कि जिससे हमारे बड़े-बड़े उद्योगपति भयभीत हो जायें और पूंजी लगाने में झिझक उठें। मैं समझता हूं कि राज्य के विधान मंडल और संसद देश के संकट का अवश्य ध्यान रखेगी। पर यह और ही बात है कि आगे आने वाली सब सन्ततियों के भावी पथ में ऐसे उपबन्धों द्वारा आप बन्धन लगा रहे हैं शायद इसी बात के कारण हमने देश के सामने आर्थिक नीति की स्पष्ट परिभाषा नहीं की है।

[श्री जदुवंश सहाय]

संभव है मेरी भविष्यवाणी सही न हो, पर मुझे भय है कि इस संविधान को जिस पर हमने इस सभा में विगत दो वर्षों से श्रम किया है, फेंक न दिया जाये क्योंकि यह एक बहुत बड़ी विवादास्पद बात होगी और क्योंकि हम ऐसी प्रणाली ग्रहण कर रहे हैं जो न सही है, न गलत है और न सही तथा गलत के बीच की है। हमारी बुद्धि में संघर्ष तथा अस्पष्टता है। अतः मेरा विचार यह है कि केवल प्रथम खंड रहे और शेष सबको अपमार्जित किया जाये। यह राज्य के विधान मंडलों अथवा संसद अथवा उन नेताओं पर जो शासन चलाते हैं छोड़ दिया जाये कि वे देश को निदेश दें और यह कहें कि किसी प्रान्त में संपत्ति के संबंध में विधियों को किस प्रकार सूत्रित किया जाये। परन्तु ईश्वर के लिये संविधान को उन बातों से न भरिये जो आपको संसार के किसी भी संविधान में नहीं मिलती हैं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 390, 391, 392 और 393 नियम विरुद्ध ठहराये जाते हैं। संशोधन संख्या 396 शाब्दिक है और उसका पेश किया जाना आवश्यक नहीं है। श्री बी. दास अपना संशोधन संख्या 397 पेश करें।

***श्री बी. दासः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'unless the law provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'unless the law provides for fair and equitable compensation' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, आपकी आज्ञा से मैं संशोधन संख्या 427 भी पेश करूंगा।

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'not more than one year before the commencement of this constitution' शब्दों के स्थान में 'after August 15, 1947' शब्द और अंक रखे जायें।"

श्रीमान, माननीय पंडित नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव का मैं समर्थन करता हूं। मैं समझता हूं कि यदि मेरे दो संशोधनों को सभा द्वारा स्वीकार कर लिया जाता है तो वह परिस्थिति को ठीक रूप से स्पष्ट कर देगा ओर हम उस जाल में नहीं फसेंगे जिसके बारे में हमने अभी अपने माननीय मित्र प्रो. के.टी. शाह द्वारा सुना था जो कुछ दिनों बाद संसद में विरोधी दल के नेता होंगे।

9 अगस्त, 1942 को हमारे नेताओं को राष्ट्र के लिये "भारत छोड़ो" युद्ध का नारा देने के कारण बन्दी किया गया था और वे अपनी स्वतंत्रता प्राप्त करने का उचित तथा दृढ़ विचार लेकर कारागृह से बाहर निकले। 1945-46 में हमारे

नेताओं ने राष्ट्र के लिये कांग्रेस का निर्वाचन संबंधी घोषणापत्र निकाला जिसमें भूमि प्रणाली के सुधार तथा संपति अर्जन को निर्दिष्ट करते हुए घोषणा की गई थी:

"भूमि प्रणाली का सुधार, जिसकी प्रमुख रूप से आवश्यकता है उसमें किसान और राज्य के बीच में मध्यवर्तियों का निकालना निहित है। अत: इन मध्यवर्तियों के अधिकार को उचित प्रतिकर देकर अर्जित कर लेना चाहिये।"

अधिकांश कांग्रेस नेताओं ने, जिनमें से कुछ यहां हैं और कुछ यहां से बाहर हैं, यह मान लिया है कि अर्जित संपत्ति का उचित प्रतिकर देना चाहिये। किसी प्रकार से इस सभा में तथा इससे बाहर इस बात पर बहुत ही विवाद चल रहा है कि राष्ट्रीयकरण तथा संपत्ति हरण होना चाहिये और ठीक तथा उचित प्रतिकर नहीं देना चाहिये। जब 1947 में कांग्रेस को शक्ति मिली तो दुर्भाग्यवश उसका युवक वर्ग राष्ट्रीयकरण तथा संपत्तिहरण की बातें करने लगा। उनमें से आज कुछ इस सभा के तथा कांग्रेस सरकार तक के सदस्य हैं और वे इस 'संपत्ति हरण' शब्द पर चुप है जिसकी मेरे पुराने मित्र, लोकतंत्रात्मक समाजवादी नेता, प्रो. शाह ने इतने निश्चित रूप से परिभाषा की है।

हम कांग्रेसियों पर देश के प्रति एक महान कर्तव्य है। क्या हमें समाजवादियों के जाल में फंसना है और विधि की शरण लेनी है और विधि के नाम पर कोई प्रतिकर नहीं देना है या हमें कांग्रेस के इस संसदीय घोषणापत्र पर अटल रहना है कि उचित प्रतिकर दिया जाये? इसी कारण मैं चाहता हूं कि पंडित जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किये गये संशोधन में घोषणापत्र के साथ शब्द ज्यों के त्यों पुर:स्थापित कर दिये जायें।

दूसरे संशोधन के सम्बन्ध में जिसमें यह कहा गया है कि "कोई विधि जो संविधान के प्रारंभ से एक वर्ष पूर्व पारित कर दी गई है" मैं यह देखता हूं अन्य लोगों ने भी इस प्रकार के संशोधन प्रस्तुत किये हैं कि डेढ़ वर्ष होना चाहिये। विषय को अस्पष्ट क्यों बनाया जाता है? हमने स्वतंत्रता तथा स्वाधीनता प्राप्त कर ली–यद्यपि वह स्वाधीनता आज संयुक्त राष्ट्र संघ के देशों के साथ गठबंधन पर आश्रित है। यह क्यों नहीं कहते कि "कोई विधि जो 15 अगस्त, 1947 के बाद पारित हुई है?" इससे पंडित जी ने जो संशोधन पेश किया है उसमें कोई अन्तर नहीं आता है बल्कि इससे एक ऐसी तिथि नियत हो जाती है जो सर्वविदित है और इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष पूर्व की बातें करने से कोई लाभ नहीं।

पंडित नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्ताव को, चाहे मेरे संशोधन सभा द्वारा स्वीकार किये जायें या नहीं, मुझे तो स्वीकार करना ही है क्योंकि उससे कोई अधिक अच्छी प्रस्थापना सभा में सदस्यों ने जो प्रस्तुत या पेश की हैं उनमें नहीं है। उसको स्वीकार करने में हमें यह मानना पड़ेगा कि हम अपने मूलभूत आदर्शों से विलग हो रहे हैं। हम उस निर्वाचन संबंधी घोषणापत्र पर वापस पहुंच जाते हैं जिसने देश को गत चार वर्ष तक बड़ी-बड़ी आशायें बंधाई थीं और बड़े-बड़े आदर्श प्रदान किये थे अर्थात् 1945-46 का घोषणापत्र। शायद जैसे ही हमने शक्ति का प्रयोग किया, राष्ट्र के नेता अधिकार लिप्सा में बौखला गये और कांग्रेस पक्ष के नेता यह समझने लगे कि आदर्शवाद ठीक वस्तु नहीं है और जीवन में समझौता होना चाहिये।

[श्री बी. दास]

पर मैं उनमें से नहीं हूं जो समाजवादियों द्वारा दबा दिये जायेंगे। यदि समाजवादी देश पर कांग्रेस के स्थान में अधिकार करना चाहते हैं तो वे यह योजना बनायें कि वे क्या करेंगे। समाचार पत्रों में या मंच पर कांग्रेस के नेताओं की कुछ आलोचना करने के अलावा समाजवादियों ने देश के लिये न तो कोई रचनात्मक किया और न उसके लिये कोई योजना बनाई जिससे कि राष्ट्र प्रशासन पर नियंत्रण करने के लिये देश की महान कांग्रेस संस्था के उत्तराधिकारी होने की वे अपनी योग्यता सिद्ध कर सकें। आज प्रात:काल 'स्टेट्समेन' में एक छोटा सा नोट पढ़कर मुझे हंसी आई जिसमें लेखक ने जिक्र किया है कि कांग्रेस सरकार का विरोध करने के लिये उन्होंने संसद में अपना एक समाजवादी लोकतंत्रात्मक दल बनाया है उसने कहा है कि अनुत्तरदायित्वपूर्ण बातों, सभा में असंगत बकवास तथा बाहर बिना किसी काम के अलावा उन्होंने अब तक कोई ऐसा योजित कार्यक्रम नहीं बनाया है जिसके द्वारा वे देश में बेहतर सरकार की स्थापना कर सकें या ऐसी सरकार स्थापित कर सकें जो रचनात्मक समाजवाद का एक शान्तिपूर्ण युग ला सके। जैसा कि मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह ने कुछ मिनट पूर्व समाजवादी कार्यक्रम की परिभाषा की थी उससे यदि मैं कुछ समझा हूं तो यह है कि वे सारी संपत्तियों को अधिकार च्युत करना चाहते हैं। मैंने टोका था "मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह भारत के नागरिकों की समस्त जगम संपत्ति का हरण करना क्यों नहीं चाहते हैं?" इससे उनको तथा समाजवादी दल को कुछ संपत्ति तथा धन अपने तत्कथित कार्यक्रम को चलाने के लिये उसी प्रकार से मिल जायेगा जैसे पाकिस्तान सरकार भारतवर्ष में आये हुए विस्थापित हिन्दू और सिखों की 4,000 करोड़ की संपत्ति जब्त करके काम चला रही है। यह सही हल नहीं है। अधिक धन पैदा करने का सही हल संपत्ति हरण नहीं है। अधिक उत्पादन तथा लोक की अधिक कुशल क्षेत्र के लिये प्रो. के.टी. शाह और शायद समाजवादी लोग देश में उद्योगों का जिस प्रकार संचालन करना चाहते हैं वह संचालन संपत्ति हरण द्वारा नहीं होगा। यदि उद्योगों का हरण किया जाता है तो कोई उद्योग जीवित नहीं रह सकता है। यदि संपत्ति हरण से समाजवादी श्रमिक अधिक उत्पादन करने के लिये अधिक अच्छा कार्य करेंगे तो मैं समझता हूं कि समाजवादी इस रूप में गलत सोच रहे हैं। जन और घंटे के आधार पर पर्याप्त उत्पादन कर के ही इन उद्योगों को भारत के राष्ट्रीय आकलन को बनाये रखने के लिये पर्याप्त उत्पादन करना चाहिये, चाहे उन उद्योगों पर किसी व्यक्ति का निजी रूप में अथवा राज्य का स्वामित्व हो। यदि मेरे मित्र प्रो. के.टी. शाह जो राष्ट्रीय योजना समिति के मंत्री थे उन सुन्दर तथा अध्ययनशील अंकों के लिखने के बाद इस परिणाम पर पहुंचे हैं कि राष्ट्रीय आकलन का तब तक पोषण नहीं किया जा सकता जब तक समस्त संपत्ति का हरण न किया जाये, चाहे वह भूमि के रूप में संपत्ति हो अथवा चाहे वह लोक उपयोगी व्यवसाय अथवा अन्य व्यवसाय के रूप में हो, यदि समाजवादियों का इसी प्रकार का स्वप्न है तो मुझे उन पर दया आती है और निकट भविष्य में भारत सरकार की बागडोर कभी उनके हाथों में न हो सकेगी।

पंडित जवाहरलाल नेहरू का संशोधन स्वीकार करते हुए मैं समझौते को स्वीकार करता हूं। यद्यपि उससे मेरी आत्मा को संतोष नहीं होता है पर उससे वर्तमान आवश्यकताओं की पूर्ति होती है और इसी आधार पर मैं उसका समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 398 उसी प्रकार का है जैसा 397। 390 का प्रथम भाग भी उसी प्रकार का है। अतः इनका पेश किया जाना आवश्यक नहीं है।

***श्री जसपतराय कपूरः** क्या मैं यह निवेदन कर सकता हूं कि भाग (क) संशोधन संख्या 397 या 398 से कुछ भिन्न प्रकार का है?

***अध्यक्षः** आप अपने संशोधन के खंड (ख) और (ग) पेश कर सकते हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** संशोधन संख्या 389 में (ख) और (ग) भी आ जाते हैं।

***अध्यक्षः** हां, उसे श्री जदुवंश सहाय पेश कर चुके हैं। अतः इन सब संशोधनों को पृथक् पृथक् पेश करना आवश्यक नहीं है।

***श्री एस. नागप्पा** (मद्रास : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'for Compensation for' शब्दों के स्थान में 'Compensation not more than 5 per cent of the market value of' शब्द रखे जायें।"

जब इन शब्दों को बदल दिया जायेगा तो वह खंड इस प्रकार पढ़ा जायेगा:

"No property movable or immovable, including any interest in, or in any Company owning, any Commercial or industrial undertaking, shall be taken possession of or acquired for public purposes under any law authorising the taking of such possession or such acquisition unless the law provides compensation not more than 5 per cent of the market value of the property taken possession of or acquired etc."

[कोई स्थावर या जंगम संपत्ति, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, ऐसी विधि के अधीन जो ऐसा कब्जा या अर्जन करने का प्राधिकार देती है, सार्वजनिक प्रयोजन के लिये कब्जाकृत या अर्जित तब तक नहीं की जायेगी जब तक कि वह विधि कब्जाकृत या अर्जित संपत्ति के लिये बाजार दर का 5 प्रतिशत से अनाधिक प्रतिकर का उपबन्ध न करती हो, इत्यादि इत्यादि।]

हमने इस अनुच्छेद को अन्याय्य बना दिया है। जब हम ऐसा करते हैं तो कोई सिद्धान्त होना चाहिये। प्रतिकर के रूप में अधिकतम हम क्या दे सकते हैं? न्याय्य

[श्री एस. नागप्पा]

प्रतिकर तो हम देंगे ही नहीं। जो कुछ भी हम देंगे उसे ठीक तथा उचित समझा जायेगा। इन दिनों राज्य ने जमींदारों और पूंजीवादियों की संपत्ति अर्जन करने में रक्षा की है। देश की राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था को बनाये रखने के लिये अब हमें राज्य के लिये, राज्य के कल्याण के लिये, जन साधारण की बेहतरी के लिये उस संपत्ति की अपेक्षा है। अत: अब हमें इस बात पर भी विचार करना चाहिये कि संपत्ति का उचित रीति से प्रयोग न करके अर्थात् जो पूंजी उनके कब्जे में है उससे अपेक्षित मूल्य राशि का उत्पादन न करके राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था के गिराने में इन पूंजीवादियों और जमींदारों पर किस प्रकार का उत्तरदायित्व रहा है। इसके फलस्वरूप उत्पादन गिराने का उत्तरदायित्व उन पर है। उदाहरण के रूप में उस जमींदार को लीजिये जिससे पास हमारों एकड़ भूमि है। कभी-कभी पर्याप्त रूप से श्रम जीवी न मिलने के कारण वह अपनी समस्त भूमि को नहीं जोत पाता और अधिकांश भूमि बंजर हो जाती है और यदि वह जोतता भी है तो वह उतना परिश्रम नहीं करता जितना कि अपेक्षित तथा आवश्यक है और शायद वह इस भूमि से उतनी मात्रा में उत्पादन न कर सके जितना कि हो सकता है। अत: राष्ट्रीय संपत्ति में हानि पहुंचाने का उत्तरदायित्व उस पर है। अत: वह प्रतिकर नहीं वरन् किसी और ही वस्तु के योग्य है। राष्ट्र को राष्ट्रीय संपत्ति से वंचित करने के लिये उसे फटकार मिलनी चाहिये।

अब हमें यह खुशी है कि देश ने यह समझ लिया है कि हमें संपत्तियों पर किसी व्यक्ति अथवा निगम का स्वामित्व नहीं होने देना चाहिये वरन् समस्त संपत्ति समूचे रूप में देश के अधिकार में रहे। हम जमींदारी प्रथा का उन्मूलन कर रहे हैं। दो प्रान्तों में यह कार्य आरम्भ हो चुका है। तो अब यह भूमि किसके पास जाये? वह छोटे छोटे जमींदारों के हाथ में न जानी चाहिये। वह राज्य के पास जाये। कुछ चंद जमींदारों के स्थान में हमें असंख्य जमींदार नहीं बनाने चाहियें। यह जमींदारी का उन्मूलन नहीं है। और यदि आप अधिक प्रतिकर देते हैं तो इसका अर्थ यह होगा कि यह जमींदारी का क्रय करना है न कि उन्मूलन। जब आप राज्य के लिये संपत्ति अर्जित करते हैं। तो राज्य का उस पर नियंत्रण होना चाहिये। आखिर जिस व्यक्ति का उस पर कब्जा है वह व्यक्ति भूमि का उपयोग करने के लिये ही तो है। उसका स्वामी बनना उसके लिये आवश्यक नहीं है। आज एक पट्टादार उस भूमि का स्वामी नहीं है जिसका वह उपयोग कर रहा है। सरकार उसकी स्वामिन है क्योंकि सरकार ने एक एक इंच कर के उस पर अधिकार किया है अत: सरकार ही उसकी स्वामिन होनी चाहये। पट्टादार को केवल भूमि का उपयोग करने का अधिकार है। वह यह नहीं कह सकता कि भूमि उसकी है। जमींदार भी केवल जनता की ओर से भूमि के रक्षक थे इसके अतिरिक्त और कुछ नहीं। वे लोगों से लगान का संग्रह भी करते थे। अब आप लगान उठाने के अधिकार को छीन रहे हैं और जनता को भूमि दे रहे हैं जो अब तक जमींदार के अधीन उसे जोत रहे थे। आप राज्य को भूमि नहीं दे रहे हैं। आप जमींदारों से भूमि छीन कर कई छोटे जमींदार बना रहे हैं जिनकी संख्या पहले जमींदारों से बहुत अधिक होगी। इस प्रकार आप भूमि की समस्या को नहीं सुलझा सकते हैं। इस समस्या का हल भूमि का राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण करने में निहित

है। उस स्थान के व्यक्ति उस स्थान की भूमि के स्वामी होने चाहियें, भूमि के जोतने वाले भूमि के स्वामी होने चाहियें। तभी आप यह कह सकते हैं कि आपने राज्य के प्रयोजनों के लिये भूमि अर्जित की है। जब तक ऐसा नहीं किया जाता तब तक आप यह नहीं कह सकते कि आपने समस्या हल कर दी है।

हमने आरम्भ में यह विनिश्चय किया था कि हमारा उद्देश्य एक सहयोगी संयुक्त राष्ट्र बनाना है। जब तक आप भूमि का समाजीकरण नहीं करते तब तक आप इस प्रकार का राष्ट्र नहीं बना सकते। जमींदारों से अर्जित भूमि की एक सहयोगी आधार पर योजना बनानी चाहिये और कुशल किसानों को इस अनुदेश सहित दी जानी चाहिये कि वे अधिकाधिक अनाज उगायें। अब मैं जो प्रस्थापना करना चाहता हूं वह यह है कि इस प्रयोजन के लिये जब आप भूमि अर्जित करते हैं तो ठीक तथा उचित यही है कि आप 5 प्रतिशत या इससे कम दें। इन चन्द शब्दों के साथ सभा को स्वीकृति के लिये मैं इस प्रस्ताव को प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद का संशोधन संख्या 401 पेश किये जा चुके संशोधनों के अन्तर्गत आ जाता है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** जी नहीं।

***अध्यक्षः** 'उचित प्रतिकर', 'पूर्ण प्रतिकर' इत्यादि इत्यादि पदों का एक ही अर्थ है।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** उनमें परस्पर कुछ अन्तर झलकता है।

***अध्यक्षः** हां, परन्तु इस प्रकार के अन्तर मसौदा संबंधी विषय हैं। संशोधन संख्या 402 भी आ जाता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गव** (पूर्वी पंजाब : जनरल): 402 का मद (3) पूर्णतया भिन्न है। यह किसी के अन्तर्गत नहीं आता है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 402 में खंड (3) जिसमें 'सिद्धान्तों' शब्द के पूर्व 'समुचित' शब्द रखने का प्रयास किया गया है, केवल यह ही नया है। आप उसे पेश कर सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में '(principles)' शब्द के पूर्व '(appropriate)' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

श्रीमान, इसके पश्चात् मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'Constitution' शब्द के पूर्व 'and designed to execute a scheme of agrarian reform by abolition of Zamindari and

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

conferring rights of ownership on peasant proprietors for such compensation as the Legislature of the State considers fair' शब्द प्रविष्ट किये जायें।"

***अध्यक्षः** आपका संशोधन संख्या 479 पेश नहीं किया जा सकता है। वह पहले संशोधनों के अन्तर्गत आ जाता है। आप संशोधन संख्या 487 पेश कर सकते हैं।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** तो फिर, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'or specifies the' शब्दों के पूर्व 'proper' अथवा विकल्पतः 'fair' शब्द प्रविष्ट किया जाये।"

इसके बाद, श्रीमान, मैं यह पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'having been' शब्दों के स्थान में 'is' शब्द रखा जाये।"

***अध्यक्षः** आपका संशोधन संख्या 503 संशोधन संख्या 389 के अन्तर्गत आ जाता है संशोधन संख्या 512 भी पेश नहीं किया जा सकता है।

***पं. ठाकुरदास भार्गवः** तो फिर, आपकी अनुमति से मैं यह पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह खंड जोड़ दिया जाये:—

'(7) If any State passes a law designed to execute a scheme of agrarian reform in the State by abolition of Zamindari conferring rights of ownership on peasant proprietors or at least rights of occupancy for such compensation as the State Legislature considers fairs on the line of the law referred to in clause (4) of this article, such low shall be submitted by the Governor or the Ruler as the case may be, to the President for his certification. If the President by public notification certifies the law, it shall not be called in question in any court on the ground that it contravenes the provisions of clause (2) of this article.,"

[(7) जमींदारी का उन्मूलन कर किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर या किसी ऐसे प्रतिकर के लिये उनके कब्जा रखने का कम से कम अधिकार देकर, जिसे इस अनुच्छेद के खंड (4) में निर्दिष्ट विधि के आधार पर राज्य विधान-मडल ठीक समझे, यदि कोई राज्य अपने यहां कृषि सुधार की योजना प्रवृत्त करने के लिये विधि पारित करता है तो इस विधि को प्रमाणन के लिये राष्ट्रपति के पास यथास्थिति राज्यपाल या शासक द्वारा भेजा जायेगा। यदि लोक अधिसूचना द्वारा राष्ट्रपति उस विधि को प्रमाणित कर देता है तो उस विधि पर किसी न्यायालय में इस आधार पर आपत्ति नहीं की जायेगी कि वह इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपखंडों का उल्लंघन करती है।]

इन संशोधनों के संबंध में मैं यह निवेदन करना चाहता हूं कि लोक प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जन करने के वर्तमान सिद्धान्तों की इस प्रस्थापित अनुच्छेद के खंड (5) द्वारा रक्षा की गई है। वर्तमान विधि 1894 के अनिधियम 1 में है जिसके अनुसार संपत्ति के अर्जन करने या अधिग्रहण करने के पूर्व प्रतिकर दे दिया जाता है। विधि में जो प्रतिकर दिया जाना निर्धारित किया गया है वह अर्जन करने के समय के बाजार मूल्य के सहित 15 प्रतिशत और है जो व्यवस्था में उथल-पुथल होने के कारण है। मैं समझता हूं कि अनुच्छेद 24 का खंड (5) उस विधि की रक्षा करता है और इस कारण बाद में विधान-मंडल द्वारा किसी अन्य उपबन्ध बनाने के पूर्व यह विधि प्रवृत्त रहेगी और यदि कोई भूमि अर्जित की जाती है तो वह इस विधि के अनुसार अर्जित की जायेगी। वर्तमान विधि के अधीन कोई कार्यपालिका पदाधिकारी प्रतिकर निश्चित करता है, पर उसका निश्चय अन्तिम नहीं होता। इस आदेश से असन्तुष्ट कोई व्यक्ति व्यवहार न्यायालय या किसी जिला न्यायाधीश के यहां जा सकता है और वहां यदि कार्यपालिका पदाधिकारी या राजस्व पदाधिकारी या जो कोई भी पदाधिकारी प्रतिकर निश्चित करता है उससे वह संतुष्ट नहीं है तो उस आदेश को पुनरीक्षित करा सकता है। इसके पश्चात् वह व्यवहार वाद हो जाता है और व्यवहार न्यायालय यह मालूम करती है कि बाजार मूल्य क्या है और उसमें 15 प्रतिशत जोड़ देती है। वर्तमान विधि यह है। संशोधन संख्या 369 के अनुसार यदि बाद में विधानमंडल द्वारा कोई विधि पारित की जाती है तो वह विधि अनुच्छेद 24 में दिये हुए आधार पर होगी।

जिस रूप में यह अनुच्छेद 24 है उस रूप में उसमें जो भी व्यक्ति उसे पढ़ता है उसे धोखे में डालने का प्रयास किया गया है कि वह न्याय्य अधिकार है। इस सभा में नहीं पर अन्यत्र हमसे यह कई बार कहा गया है कि यह अधिकार न्याय्य है। इस बात में अपवाद दिया गया था कि जहां तक जमींदारों का संबंध है यह न्याय्य नहीं होना चाहिये। सारा वाद-विवाद इसी प्रश्न पर था कि संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 24 में जो अधिकार दिया गया था वह न्याय्य है या नहीं। आरम्भ से ही मेरा यह मत रहा है कि संविधान के मसौदे के अनुच्छेद 24 में कोई न्याय्यता नहीं है क्योंकि विधान मंडल के सिद्धान्त निर्धारण करने के पश्चात् वे सिद्धान्त अपरिवर्तनीय हो जाते हैं। उन सिद्धान्तों पर किसी न्यायालय में आपत्ति

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

नहीं की जा सकती। कोई भी व्यक्ति न्यायालय के समक्ष यह प्रश्न नहीं ला सकता है कि जो सिद्धान्त विधान मंडल ने निर्धारित किये हैं वे पर्याप्त प्रतिकर देने में असमर्थ हैं। स्वयं 'प्रतिकर' शब्द का अर्थ समुचित रूप में जैसे को तैयार है। स्वयं 'प्रतिकर' शब्द में पर्याप्तता तथा पूर्णता का भाव निहित है, यद्यपि 'प्रतिकर' के इस अर्थ के प्रति भी शंकायें प्रकट की गई हैं। मैं यह नहीं जानता हूं कि इस प्रतिकर शब्द का यह अर्थ है या नहीं, पर जिस रूप में मैंने इस अनुच्छेद को समझा है उसके अनुसार यह बात मेरे मन में बिल्कुल स्पष्ट है कि यदि विधि पुस्तक में खंड (2) इसी रूप में रहता है तो विधान मंडल ही प्रतिकर के अन्तिम निर्णायक होंगे न कि न्यायालय।

होगा यह कि यदि किसी विधान में सिद्धान्त निर्धारित कर दिये जाते हैं तो अन्त में वही सिद्धान्त यह विनिश्चित करेंगे कि प्रतिकर क्या होना चाहिये। हां, यदि व्यवहार्यत: कोई प्रतिकर नहीं दिया जाता है तब तो कोई व्यक्ति न्यायालय जा सकता है अन्यथा नहीं। इस प्रकार जो प्रतिकर दिया जाता है वह इस धारा को धोखा देना है तो इस दशा में उस विषय को न्यायालय में ले जाया जा सकता है। इसका अर्थ यह है कि यदि 100 रुपये के स्थान में 1 रुपया दिया जाता है तो 'प्रतिकर' शब्द के साथ पूर्ण अत्याचार होगा। यदि सौ रुपये में से एक रुपया दिया जाता है तब तो वह धोखा होगा, यदि अट्ठानवे रुपये या पांच रुपये दिये जाते हैं तो वह धोखा नहीं होगा। श्रीमान, यह खंड (2) मेरी समझ से हमारे साथ धोखा है क्योंकि मैं समझता हूं कि वह न्याय्य नहीं है। जनसाधारण में विश्वास उत्पन्न कराने के लिये उसे न्याय्य का रूप दे दिया गया है। मेरा निवेदन यह है कि वह एक ही प्रकार से न्याय्य हो सकता है और यही मैंने अपने संशोधन संख्या 402 में आपके विचारार्थ प्रस्तुत किया है कि 'सिद्धान्तों' शब्द के पूर्व 'समुचित' शब्द जोड़ दिया जाये। यदि सभा इस संशोधन को स्वीकार कर लेती है तो इसका यह अर्थ होगा कि सिद्धान्त समुचित तथा उचित होने चाहियें और इन समुचित सिद्धान्तों का केवल एक ही परिणाम होगा वह यह कि पूर्ण या उचित प्रतिकर दिया जायेगा। श्रीमान, मेरा आग्रह यह है कि यदि 'सिद्धान्तों' शब्द यहां बिना किसी विशेषण के रहता है तो मुझे पूर्ण विश्वास है कि यह खंड न्याय्य नहीं है। अत: यदि सभा मेरा संशोधन स्वीकार कर लेती है तो हम इस अधिकार को न्याय्य बना सकते हैं चूंकि संविधान के निर्माताओं का यह उद्देश्य स्पष्ट है कि ऐसा होना चाहिये। अत: मेरा निवेदन यह है कि मेरा संशोधन स्वीकार करने में सभा एक अच्छी मंत्रणा को स्वीकार करेगी।

अपने समाजवादी मित्रों के तर्क मैंने सुने हैं जिनका यह विचार है कि यदि विधानमंडल कुछ प्रतिकर या सिद्धान्त नियत करता है तो इस विषय में न्यायालय को कोई अधिकार नहीं होना चाहिये, अन्तिम रूप में कुछ भी कहने का अधिकार नहीं होना चाहिये। मैं उनसे झगड़ा नहीं करता हूं क्योंकि यह केवल एक दृष्टिकोण है, पर वह लोग जो इस बात में विश्वास करते हैं कि अन्य देशों के समान इस देश में नागरिक अधिकारों के अन्तिम निर्णायक न्यायालय हैं, उनके लिये यह स्पष्ट है कि यह अनुच्छेद 24 न्यायता के उस सिद्धान्त तथा संपत्ति के अधिकार के विरोध में है, जो अनुच्छेद 13 के अधीन अभिज्ञात तथा प्रत्याभूत है।

श्रीमान, जब यह संशोधन पेश किया था उस समय हमसे यह कहा था कि संप्रदाय के अधिकार के विरोध में व्यक्ति के अधिकारों पर भी विचार करना चाहिये। मैं इससे पूर्णतया सहमत हूं। अपने संविधान के उद्देश्यमूलक प्रस्ताव में हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि हम सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक न्याय को सुनिश्चित करना चाहते हैं। मैं यह चाहता हूं कि व्यक्ति का गौरव और राष्ट्र की एकता अवश्य होनी चाहिये। श्रीमान, मैं यह समझता हूं कि व्यक्ति के अधिकारों और संप्रदाय के अधिकारों में सुखद सहयोग होना चाहिये और इस विषय में कांग्रेस तथा समस्त देश जमींदारी के उन्मूलन के लिये वचनबद्ध है। हमारे लिये अपने वचनों से विमुख होना और यह कहना कि जमींदारी का उन्मूलन नहीं होगा, ठीक नहीं होगा। मैं यह नहीं चाहता हूं कि इस समूची बात पर इस प्रकार संकल्प किया जाये। देश के प्रत्येक व्यक्ति को इस विषय में विधान के व्यापक सिद्धान्तों को समझना तथा स्वीकार करना चाहिये।

खंड (4) के संबंध में मैंने संयुक्तप्रान्त का विधान देखा है और इस विधान के संचालन करने वाले जो सिद्धान्त हैं उनसे मैं संतुष्ट हूं। इस संविधान का पूरा मतलब यह है कि किसान संपत्ति का स्वामी हो जाये और प्रत्येक व्यक्ति अपनी भूमि का स्वामी हो जाये जिससे कि वह भूमि में पूरी रुचि रखे और उसमें जितनी उन्नति कर सकता है उतनी उन्नति करे। मैं इस सिद्धान्त को स्वीकार करता हूं कि यदि कृषि सुधार के प्रयोजनों के लिये, जिस आधार पर किसान या कृषक स्वामी बनाये जाते हैं और जमींदारी मिटाई जाती है, तो इस दशा में उतना प्रतिकर दिया जाये कितना न्यायोचित है और उसके लिये राज्य विधानमंडल अन्तिम निर्णायक तथा सर्वोत्तम विचारक है। इसी लिये मैंने संशोधन संख्या 514 प्रस्तुत किया है जिसमें एक और खंड अर्थात् खंड (7) और रखने का प्रयास किया है जिसमें मैंने यह कहा है कि यदि ऐसा अवसर हो जब कि कोई राज्य भविष्य में इस प्रकार की विधि चाहे तो खंड (4) के अधीन वह उस विधि का लाभ उठा सकता है।

खंड (6) के प्रति मैंने एक संशोधन रखा है कि उसे अपमार्जित किया जाये। बिहार विधि से मैं बिल्कुल संतुष्ट नहीं हूं। मैंने बिहार विधि का अध्ययन किया और जब मैंने उसके उपबन्धों को पढ़ा तो मुझे बड़ा आश्चर्य हुआ। उसके उपबन्धों में कहा गया है कि किसी खास तिथि से जबकि लोक अभिसूचना हो चुकी है संपत्ति के सब अधिकारों का हरण कर लिया जायेगा और जो लोग आज संपत्ति के स्वामी हैं, श्रीमान, यदि उनका भूमि पर कब्जा है तो वे केवल कब्जा रखने वाले किसान हो जायेंगे। जहां तक इस विधि का संबंध है बिहार सरकार पर इसका कोई प्रभाव नहीं पड़ता है क्योंकि यदि वह इस नये आधार पर विधि रखना चाहती है, यदि वह जमींदारी मिटाना चाहती है और उसके बाद उसके स्थान के स्वामित्व के पूर्णाधिकार सहित किसानों को स्वामी बनाना चाहती है तो मैं उसके साथ सहमत हूं। श्री मुंशी और श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर ने एक और संशोधन पेश करने का प्रयास किया है और उसमें कहा गया है कि यदि ऐसी विधि राष्ट्रपति के पास जाती है तो राष्ट्रपति को इस विधि में किसी उल्लिखित संशोधन को कराने की शक्ति होगी।

और फिर मैं यह नहीं समझ पाता हूं कि मद्रास, संयुक्तप्रान्त और बिहार सरकार ही इस रीति से ऐसी विधियां क्यों पारित करें और अन्य राज्यों को जमींदारी उन्मूलन

[पं. ठाकुरदास भार्गव]

करने की स्वतंत्रता से क्यों वंचित रखा जाये। मैं समझता हूं कि हमें न्याययुक्त होना चाहिये। यदि संयुक्तप्रान्त के विधान के आधार को विधि द्वारा स्वीकार किया जाता है जो हमें यह देखना चाहिये कि अन्य सब मामलों में वही सिद्धान्त लागू हों। "जमींदारी का उन्मूलन कर किसानों को स्वामित्व का अधिकार देकर कृषि सुधार होना चाहिये।" शब्द मेरे संशोधन में हैं और ये सिद्धान्तपुष्ट हैं। युगों के अनुभव ने इन्हें पवित्र कर दिया है। हां, ऐसे लोग हैं जो उन संपत्तियों के एक दीर्घ काल से स्वामी बने हुए हैं और अपने स्थानों से उनके अनुपस्थित रहने से उनके द्वारा अधिकारों का प्रयोग संप्रदाय के लिये उतना उपयोगी नहीं हो सकता जितना कि अन्य लोगों के द्वारा हो सकता है। जब तक यह अपवाद नहीं किया जाता व उचित नहीं होगा और यह सब प्रान्तों के लिये प्रयोज्य कर देना चाहिये।

मैंने संशोधन संख्या 406 रखा है जिसमें 'having been' शब्दों के स्थान में 'is' शब्द रखने का प्रयास है। यदि मेरा संशोधन स्वीकार कर लिया जाता है तो उसका यह अर्थ होगा कि उसके कारण प्रान्तीय सरकार को राष्ट्रपति की अनुमति के लिये उसे रोके रखने के लिये बाध्य होना पड़ेगा और फिर राष्ट्रपति अनुमति देगा क्योंकि आज यदि राष्ट्रपति की अनुमति के लिये प्रान्तीय सरकार विधेयक को रोके नहीं रखती हैं तो एक कठिनाई उत्पन्न होगी क्योंकि वह राष्ट्रपति के पास भेजा नहीं जायेगा।

इन सभी के संबंध में मुझे यह निवेदन करना है कि कई बार हमसे यह कहा जा चुका है कि ये मूलाधिकार न्याय्य है। पर अब मैं यह देखता हूं कि इस बात के प्रयत्न किये जा रहे हैं कि भारत के नागरिकों को जिन अधिकारों की प्रत्याभूति की गई है वे एक-एक करके छीने जा रहे हैं। दो या तीन दिन पूर्व मुझे यह कहने का अवसर मिला था कि अनुच्छेद 16 के अधिकारों को छीनने का प्रयास किया जा रहा है और वे छीन लिये जायेंगे। और अनुच्छेद 13 भी मैं देखता हूं कि इतने रक्षणों से लादा जा रहा है और इतने रूप भेदों के अधीन किया जा रहा है कि वह भी छीना जा रहा है। और यह विचार अनुच्छेद 15 न तो मूलाधिकार है और न न्याय्य।

यदि हम वास्तव में वैसा ही संविधान बनाना चाहते हैं जिसकी हम सारे देश में प्रशंसा करते रहे हैं तो अनुच्छेद 24 जैसा उपबन्ध हमें अधिनियमित नहीं करना चाहिये क्योंकि इस देश में न्यायालय के शासन का वह स्वयं ही निराकरण करता है। अपने देश में जहां कि हमें रक्तहीन क्रान्ति से स्वतन्त्रता मिल गई है, यह आवश्यक है कि हम इस बात का ध्यान रखें कि अनुशासन और लोकतंत्रात्मक आदर्श हमारे हृदयों में स्थापित हों और देश की विधि वह विधि हो जिसके द्वारा प्रत्येक व्यक्ति पर शासन हो। जब तक न्यायालयों को शक्ति नहीं दी जायेगी और यदि जनता के नागरिक अधिकारों और स्वातंत्र्य के अन्तिम निर्णायक न्यायालय नहीं होंगे और यदि केवल विधि निर्माताओं को ही शक्ति दी जाती है, तो मैं समझता हूं कि हमारी ऐसी दशा हो जायेगी कि कार्यपालिका पदाधिकारी हमें हमारे अधिकारों से वंचित करेंगे और यह बहुत गलत होगा। सरकार की कार्यवाहियों में मुझे एक

ऐसी प्रवृत्ति दिखाई देती है कि सर्वत्र हम न्यायालय की शक्तियों के नाश करने का प्रयास करते हैं और उसके स्थान में विधान-मंडल या कार्यपालिका को शक्ति देते हैं।

कार्यपालिका पदाधिकारी क्या है? मान लीजिये कि कोई कार्यपालिका पदाधिकारी मेरे भाग्य का निर्णय करता है; तो वह एक ऐसा व्यक्ति है जो मेरी संपत्ति लेने और मुझे बहुत कम प्रतिकर देने में रुचि रखता है। यह उचित नहीं है। वह एक ऐसा व्यक्ति नहीं होना चाहिये। जो हमेशा सरकारी हित का प्रतिनिधित्व करे। न्यायालय की नियुक्ति भी सरकार द्वारा होगी। इन न्यायालयों को हमारे नागरिक अधिकारों का निर्णय करने दीजिये जिससे कि लोगों को विश्वास हो, और फिर श्रीमान, जमींदारी इत्यादि को छोड़कर साधारण संपत्तियों के विषय में मुझे पूर्ण संतोष नहीं हुआ है कि संप्रदाय के सिद्धान्तों को उच्चता का सिद्धान्त व्यक्ति के अधिकारों के ऊपर किस प्रकार आ गया। आखिर ऐसी विधि कहां है कि सिवाय उस व्यक्ति के शेष समाज के लाभार्थ आप उस व्यक्ति के अधिकारों का बरबस हरण करें? गत साठ वर्ष या इससे अधिक समय से जिस कल्याणकारी नियम को हमने स्वीकार किया है वह यह है कि प्रतिकर की राशि नियत करने के लिये उस समय का बाजार भाव ही उचित आधार है और इससे हमें तब तक च्युत नहीं होना चाहिये जब तक कि कोई कृषि सुधार संबंधी योजना न हो, जो करोड़ों व्यक्तियों तथा मुकदमेबाजी से संबंध रखती है। मैं जानता हूं कि मेरे समाजवादी मित्र यहां आते हैं। उनमें से कुछ स्वयं बड़े धनवान हैं और जो वह प्रचार करते हैं उसका पालन नहीं करते और वे जितनी सम्पत्ति बटोर सकते हैं उसके बटोरने में लगे हुए हैं। मैं इस समय सभा के विचारार्थ जनसाधारण के विचार रखना चाहता हूं। जनसाधारण आप के 'संपत्ति चोरी है' के सिद्धान्त को अभिज्ञात नहीं करता है। वह संपत्ति की अक्षुण्णता में विश्वास करता है। मान लीजिये किसी रेल के मार्ग अथवा सरकार के किसी उपक्रम के लिये किसी भूमि या संपत्ति को लिया जाता है, इसमें संदेह नहीं कि यह लोक प्रयोजन के लिये है, परन्तु यदि पूर्ण प्रतिकर नहीं दिया जाता है तो क्या किसी को संतोष हो जायेगा। तथा क्या इसके लिये कोई मान्य तर्क है कि उसे पूर्ण प्रतिकर क्यों न दिया जाये? सत्य तो यह है कि आप जिस प्रकार विधि अधिनियमित करना चाहते हैं यदि उसी प्रकार से विधि अधिनियमित करेंगे कि जनता के नागरिक अधिकारों का अन्तिम निर्णायक विधान मंडल है न कि न्यायालय, तो किसी को विश्वास नहीं होगा और लोगों के विश्वास को जर्जरित करना राजनीति नहीं है।

*__डॉ. पी.एस. देशमुख__ (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'is to be determined' शब्द के पश्चात् 'and paid' शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान, मैंने एक और संशोधन की सूचना दी है जो संख्या 434 पर है। उसके प्रथम भाग को मैं पेश नहीं करना चाहता हूं जिसके द्वारा मैंने 24-क जोड़ने का

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

प्रयास किया है, परन्तु श्रीमान, उसके अन्तिम भाग को पेश करने की मैं अनुमति मांगता हूं जिसको यहां 24-ख के रूप में रखा गया है और यदि वह स्वीकार कर लिया जाता है तो उसकी संख्या 24-क करनी होगी।

श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 के निर्देशानुसार प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के पश्चात् यह नया अनुच्छेद जोड़ दिया जाये:—

'24-A. Nothing in this Constitution shall prevent the Parliament from exercising jurisdiction over the State Legislature from acquiring any properties movable or immovable belonging to any public charitable trust without compensation and for the purpose of better utilization and management of the trust property.'"

[24-क. इस संविधान की किसी बात से किसी स्थावर या जंगम संपत्ति पर जो किसी लोक पूर्त न्यास का हो, बिना प्रतिकर के तथा न्यास संपत्ति के अधिक अच्छे उपयोग तथा प्रबन्ध के प्रयोजन के लिये संसद को क्षेत्राधिकार के प्रयोग करने में और विधान-मंडल को इस संपत्ति के अर्जन करने में कोई बाधा नहीं होगी।]

श्रीमान, इसमें सन्देह नहीं कि यह संविधान में एक बड़ा महत्वपूर्ण उपबन्ध है और इस कारण यह कोई आश्चर्यजनक बात नहीं है कि हम इन उपबन्धों पर इतने दीर्घ काल से विचार-विमर्श कर रहे हैं। हमारे इतने प्रयत्न करने पर भी कोई ऐसा सूत्र नहीं निकल पाया। जो प्रत्येक व्यक्ति को मान्य हो। श्रीमान, संपत्ति पर दावा या संपत्ति के प्रति हमारी विचारधारा वैयक्तिक स्वातंत्र्य के ही बाद की बात है, और वैयक्तिक स्वातंत्र्य सब राजनैतिक विचार तथा संविधानों का मुख्य तत्व है। जैसे-जैसे समय बीतता जाता है वैसे-वैसे ही निजी संपत्ति की विचारधारा में बड़े-बड़े परिवर्तन होते जाते हैं। एक ओर पूंजीवाद का आधिक्य है तो दूसरी ओर रूस का उदाहरण है जहां सब निजी संपत्तियां जब्त की जा चुकी हैं। भारत संसार के एक महान् राष्ट्र के रूप में आ चुका है और केवल एक इसी बात पर कि हम अब किस प्रकार से निजी संपत्ति पर विचार करेंगे, यदि इस देश का शासन तथा भाग्य नहीं तो राजनीति की स्थिति तो निर्भर करेगा ही।

इस अनुच्छेद के रूप में जो सूत्र यहां प्रस्तुत किया गया है वह मेरी सम्मति से बेमन से बनया गया है। वह न तो निजी संपत्ति की रक्षा करता है न उसको जब्त करता है। यदि जनता की पुकार को सुनना आवश्यक है जो साम्यवादी विचारों से अधिकाधिक प्रभावित होती जा रही है कि समस्त भूमि, सब खानें और सब वस्तुयें जनता की हैं और उन पर किसी व्यक्ति का संरक्षित या पृथक् अधिकार

नहीं हो सकता है, यदि हम इस विचार को क्रियान्वित करना चाहते हैं या लोगों की इच्छा का सम्मान करना चाहते हैं या लोगों की मांगों के अनुसार कार्यवाही करना चाहते हैं जो विचार कि साम्यवाद को दूर रखने के हमारे सब प्रयत्नों के होते हुए भी हमारी जनता के लिये अधिकाधिक प्रिय होते चले जा रहे हैं, यदि हम अपने कई बार घोषित किये गये वचनों से, जो भिन्न-भिन्न दशाओं तथा परिस्थितियों में दिये गये थे, विमुख नहीं होना चाहते हैं तो इस विशेष सूत्र में हम जितना आगे बढ़े हैं उससे बहुत आगे बढ़ना हमारे लिये आवश्यक होगा। परन्तु श्रीमान, मैं एक सतर्कतापूर्ण बात की मंत्रणा देना चाहता हूं। मुझे विश्वास है कि देर या अबेर में भारत में कोई निजी संपत्ति नहीं रहेगी। हम शीघ्रता से इस आदर्श, इस ध्येय और यदि आप चाहते हैं तो इस दुर्घटना की ओर बढ़ रहे हैं। परन्तु वर्तमान समय में अपने माननीय मित्र श्री सहाय द्वारा पेश किये गये संशोधन को स्वीकार कर मैं इस वस्तुस्थिति को कुछ अनिश्चित, अपरिभाषित तथा लचीली रखना पंसद करता।

श्रीमान, जैसाकि मैं कई बार कह चुका हूं कि ऐसे विषय में और इस दशा में तो किसी प्रकार से भी हमें वचन देने या संसद की शक्तियों को शृंखलाबद्ध करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिये। यह एक ऐसा विषय है जिसके लिये एक बहुत सतर्कतायुक्त तथा पूर्ण विचार अपेक्षित है और मैं समझता हूं कि इस समय इसके लिये जितना समय आवश्यक है उतना समय देना हमारे लिये असंभव है। मेरी सम्मति में इस विषय में समस्त संगत सूचना एकत्रित करने तक का हमें समय नहीं मिला और यदि मैं ऐसा कह सकता हूं तो यह कहूंगा कि हममें से सबसे योग्य व्यक्ति समस्त भारत में संपत्ति के प्रति कोई निश्चित नीति विनिश्चित नहीं कर सके। जिस संशोधन की सूचना दी गई है और जो इस सभा में प्रस्तुत किया गया है उसके रूप में यह स्पष्ट है कि अपने मित्र समाजवादियों को शामिल करते हुए बहुत कम लोग इस विषय में स्पष्ट विचार रखते हैं कि निजी संपत्ति के अधिकारों पर हम किस प्रकार से विचार करें और जहां तक समस्त निजी संपत्ति का प्रश्न है, हम उन अधिकारों का संरक्षण करें या निराकरण करें। और यह भी एक ध्यान देने योग्य बात है कि समाजवादियों ने भी संपत्तिहरण का समर्थन नहीं किया है।

ऐसा होने के कारण यह विनिश्चय करना कोई आसान कार्य नहीं है कि सीमा कहां निर्धारित की जाये या विभाजन पंक्ति कहां खींची जाये। विशेषकर जबकि हम संविधान बना रहे हैं, हमारे पास इस पूरे उपद्वीप की भिन्न-भिन्न परिस्थितियों का अनुसंधान करने के लिये समय नहीं है, जिसके जिले जिले की परिस्थितियों में अन्तर है और प्रान्तों की परिस्थितियों में तो और भी अधिक अन्तर है। हम में से प्रत्येक के विचार भिन्न-भिन्न हैं और स्थान-स्थान पर भूमि की भिन्न-भिन्न लगानदारी है, जागीर, जमींदारी, इजारदारी, मालगुजारी इत्यादि इत्यादि और इन सब पर एक प्रकार से विचार करना और कोई ऐसा सूत्र निकालना, जो प्रत्येक व्यक्ति को केवल मान्य ही न हो पर जिसके बारे में हम यह निश्चित रूप से कह सकें कि इससे भारत का कल्याण होगा और इस विषय के लिये अन्य कोई हल अधिक उपयुक्त नहीं होगा, हमारे लिये संभव नहीं है।

इस दृष्टिकोण से मैं इस बात को अधिक पसन्द करता हूं कि जो कुछ हम कहें और जिसका हम उपबन्ध करें वह प्रथम खंड है और जो कि वास्तव में

[डॉ. पी.एस. देशमुख]

वही है जो कि भारत शासन अधिनियम में है कि "कोई व्यक्ति विधि के प्राधिकार के बिना अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।" यदि हम ऐसा करते तो वे सब भिन्न-भिन्न बातें, जो हमने इस अनुच्छेद में शामिल की हैं जिसे माननीय प्रधान मंत्री ने इस सभा के समक्ष प्रस्तुत किया है, अनावश्यक हो जातीं। स्थितिवश यह अनुच्छेद जटिल हो गया है; इसमें 'सिवाय' और 'अलावा' रखने होंगे; इसमें 'इस या उस बात के होते हुए' रखना होगा, 'इसकी कोई बात उस पर लागू नहीं होगी।' और 'जो कुछ कहा गया है उसके अधीन" इत्यादि इत्यादि इसमें रखने होंगे। मैं नहीं समझता हूं कि भविष्य के बारे में हम इतना शीघ्र तथा इतने निश्चित रूप से निर्णय करने की स्थिति में हैं कि हम कोई ऐसा सूत्र निर्धारित कर सकें जो निस्सन्देह समस्त देश के लिये लाभदायक हो। अत: मैं इस बात पर जोर दूंगा कि हम केवल यही कहें कि संसद विधि द्वारा समय-समय पर संपत्ति अधिकारों पर विनिश्चय करे।

मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह और कामत के दो रुचिकर भाषण हुए हैं। कुछ परिभाषाओं को उद्धृत करके उन्होंने संपत्ति का वर्णन किया है। श्री कामत ने कहा था कि किसी व्यक्ति ने संपत्ति को चोरी कहा है। मेरे माननीय मित्र प्रो. शाह और भी आगे बढ़े और उन्होंने उद्धरण दिये कि संपत्ति को 'लूट, डकैती, धोखा' और न मालूम क्या क्या कहा गया है। इस विचार से मैं कांप उठता हूं कि प्रो. शाह जिस सुन्दर अचकन को पहने हुए हैं और श्री कामत ने अपने कंधों पर जो रेशमी वस्त्र डाल रखा है उनका क्या होगा यदि हम इनमें से किसी परिभाषा को स्वीकार कर लें ओर उन परिभाषाओं के पीछे जो प्रयोजन है उस पर अमल करें। पर इतना ऊंचा उड़ने या इतना उच्च नैतिक तथा आध्यात्मिक आदर्श प्राप्त करने में असमर्थ हैं जिस पर यदि मुझे ऐसा कहने की अनुमति है तो हमारे ये आध्यात्मिक मित्र उड़ रहे हैं। इस महत्वपूर्ण विषय में हम अपने भावी उत्तराधिकारों को किसी नीति के प्रति वचनबद्ध नहीं कर सकते हैं जो उनके स्वविवेक को शृंखलाबद्ध करे और जो कदाचित् उनके मार्ग में अगणित कठिनाइयां उत्पन्न करे। हम वित्तीय संकट में भी फंसे हुए हैं; यह केवल इस देश का ही संकट नहीं है; यह वह संकट है जिसका अखिल विश्व को सामना करना है।

इन परिस्थितियों के अधीन भी, चाहे हम इसे न चाहें, हमें पूंजीवादियों तथा उन लोगों के साथ खिचड़ी पकानी होगी जिनके पास बड़ी-बड़ी संपत्तियां हैं और जो परिणाम होगा उसको ध्यान में रखते हुए हम उनकी पूर्णतया उपेक्षा नहीं कर सकते हैं। इसके विपरीत लोगों की यह मांग है कि समस्त भूमि पर अधिकार कर वे उसका पुनर्विभाजन करना चाहते हैं। मैं समझता हूं कि बरार प्रान्त में दो तिहाई से अधिक भूमि साहूकारों के कब्जे में है। यह स्वाभाविक है कि जब समस्त राष्ट्र यह विचार कर रहा है और उसमें यह चेतना आ गई है तो वे यह न चाहें कि कोई एक व्यक्ति ऐसी विस्तृत संपत्तियों पर एकाधिकार रखे। अत: इस बात पर अधिकाधिक जोर दिया जा रहा है कि संपत्ति का कोई पुनर्विभाजन न हो, विशेषकर भू-संपत्ति का। यदि हम इस मांग का विरोध करना चाहते हैं तो हमें दृढ़ निश्चय करना होगा और यह स्पष्ट कहना होगा कि निजी संपत्ति के अधिकार उसी प्रकार के बने रहेंगे जैसे कि वे इस समय वर्तमान हैं। परन्तु कोई आधे मन की, कोई ऐसी मध्यवर्ती बात हम नहीं रख सकते हैं जैसी कि यहां प्रस्तुत की गई है, जो न तो हमें उन लोगों के निकटतर ले जाती है जिन्हें हम

प्रसन्न करना चाहते हैं और न उस घोषणा के अनुरूप रहती है जिसको हम समय-समय पर घोषित कर चुके हैं। श्रीमान, इन परिस्थितियों के अधीन यह अधिक अच्छा होगा कि संपत्ति के अधिकार के अधिक विवरणपूर्ण वर्णन को हम भावी संसद पर छोड़ दें।

श्रीमान, मैंने जो दूसरा संशोधन पेश किया है वह विशेषकर धार्मिक न्यास के संबंध का है। श्रीमान, मैं जानता हूं कि जिस प्रकार से इन धार्मिक न्यासों का प्रबन्ध किया जाता है उससे अधिकांश शक्ति परिचित हैं और मैं जानता हूं कि यह आवश्यक है कि प्रतिकर का प्रश्न इस विषय में नहीं उठ सकता है। जितना शीघ्र राष्ट्र के हितार्थ इन बड़ी-बड़ी संपत्तियों का हम उपयोग करें उतना ही अधिक अच्छा होगा। यह एक ऐसी बात है जो बहुत ही वांछनीय है और श्रीमान, मैं आशा करता हूं कि अनुच्छेद 24 के साथ इसको जोड़ देने की जो मैंने प्रस्थापना की है वह भी स्वीकार कर ली जायेगी।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 405; यह उस संशोधन में आ जाता है जिसको डॉ. पी.एस. देशमुख ने अभी पेश किया है। संशोधन संख्या 406; श्री नज़ीरुद्दीन अहमद।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, एक बज चुका है।

***अध्यक्षः** तो फिर हम चार बजे समवेत होंगे।

***श्री एच.वी. कामतः** श्रीमान, यदि आपके लिये सुविधाजनक हो तो क्या मैं यह सुझाव दे सकता हूं कि हम रात्रि में नौ बजे समवेत हों।

***अध्यक्षः** मेरे विचार से सदस्यों के लिये नौ बजे की अपेक्षा 4 बजे समवेत होना अधिक उपयुक्त होगा। सभा 4 बजे तक के लिये स्थगित की जाती है।

इसके पश्चात् सभा दोपहर बाद चार बजे तक के लिये स्थगित हो गई।

**संविधान सभा दोपहर के भोजन के बाद चार बजे अध्यक्ष महोदय माननीय डॉ. राजेन्द्र प्रसाद के सभापतित्व में पुन समवेत हुई।*

***अध्यक्षः** श्री नज़ीरुद्दीन अहमद!

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमदः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के पश्चात् यह परन्तुक जोड़ दिया जाये:

'Provided that when any such law provides for the acquisition by any State of the interests of the Zamindars of various degrees and other intermediaries for the purpose of abolishing the Zamindari system, it shall be sufficient if the law provides for the payment of compensation

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

amounting to not less than twelve times the estimated average net income of the Zamindar of any degree or any intermediaries whose interests are to be acquired.' "

[परन्तु जब कोई विधि जमींदारी प्रथा को उन्मूलन करने के प्रयोजन के लिये भिन्न-भिन्न कोटि के जमींदारों तथा अन्य मध्यवर्तियों के हितों का किसी राज्य द्वारा अर्जित किये जाने का उपबन्ध करती है तो यदि वह विधि किसी कोटि के जमींदार या मध्यवर्ती की, जिनके हित अर्जित किये जा रहे हैं, अनुमानित औसत शुद्ध आय के बारह गुने से अन्यून राशि का प्रतिकर देने का उपबन्ध करती है तो यह पर्याप्त होगा।]

मेरा संशोधन संख्या 417 अन्य संशोधनों के अन्तर्गत आ चुका है।

मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के स्थान में यह खंड रखा जाये:

'(5) Save as provided in the next succeeding clause, nothing in clause (2) of this article shall affect the provisions of any existing law or of any law which the State may hereafter make which imposes or levie any tax or penalty which seeks to promote public health or to prevent danger to life and property.' "

[(5) आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त इस अनुच्छेद के खंड (2) की किसी बात का वर्तमान विधियों के या किसी उस विधि के उपबन्धों पर, जिसे संसद एतत्पश्चात् बनाये और जो किसी ऐसे कर या शक्ति का आरोपण या उद्ग्रहण करती हो जिसमें लोक-स्वास्थ्य की उन्नति का या जीवन-संकट तथा संपत्ति-संकट से बचने का प्रयास हो, कोई प्रभाव नहीं होगा।]

मैं संख्या 425 को भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) तथा खंड (6) में से 'Save as provided in the next succeeding clause' शब्द अपमार्जित किये जायें।"

मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में से 'clause (2) of this article' शब्द, कोष्ठक और संख्या अपमार्जित किये जायें।"

संख्या 439 को मैं पेश नहीं करता हूं।

प्रस्थापित नया अनुच्छेद 24 यद्यपि प्रकट रूप में नहीं तो कम से कम प्रभाव के रूप में एक अत्यन्त क्रान्तिकारी उपबन्ध है। इसमें सरकार की नीति में एक घोर बिलगता का संकेत है। प्रकट रूप में यह अनुच्छेद साधारण सा है पर जैसा कि मैं कह चुका हूं प्रभाव के रूप में यह बहुत ही संकटजनक है।

जहां तक इस अनुच्छेद का संबंध है जो कई संशोधनों पर अपना प्रभाव डालता है। सभा के समक्ष सारी समस्या का निचोड़ एक सिद्धान्त पर निर्भर करता है और वह सिद्धान्त प्रतिकर का सिद्धान्त है। लोक प्रयोजनों के लिये अर्जित भूमि या संपत्तियों के लिये क्या आपको प्रतिकर देना चाहिये या नहीं? सभा में इस नये अनुच्छेद 24 के पेश होने के पूर्व प्रतिकर का एक निश्चित अर्थ था कि पर्याप्त, उचित, वैध तथा न्यायोचित प्रतिकर दिया जाये। प्रकार चाहे जो कुछ हो जो कुछ आप लेते हैं उसके एवज में आपको देना चाहिये। अनुच्छेद 24 के पुर:स्थापन होने के पूर्व भारत में यही विचार प्रचलित था और समस्त सभ्य देशों में यही विचार अब भी है। इस अनुच्छेद के चित्रपट पर आने के पूर्व भारत में भी यही विचार था। श्रीमान, उचित प्रतिकर देना इतना न्यायपूर्ण, इतना उचित और इतना तर्कयुक्त प्रतीत होता है कि इसके समर्थन के लिये किसी तर्क की आवश्यकता नहीं है। नये अनुच्छेद में प्रतिकर देने का एक उपबन्ध है। परन्तु प्रसंग को ध्यान में रखते हुए तथा कुछ उद्घोषणाओं को ध्यान में रखते हुए और उन कुछ सूक्ष्म उपबन्धों को ध्यान में रखते हुए जो इसके जालरन्ध्र में छिपे पड़े हैं इस विषय पर विचार करते समय प्रत्येक व्यक्ति को कदाचित् बड़ी होशियारी तथा सावधानी से आगे बढ़ना चाहिये।

इस सभा में माननीय प्रधान मंत्री द्वारा की गई कुछ उद्घोषणाओं के कारण परिस्थिति बहुत विषम हो गई है। श्रीमान, उनके लिये मेरे हृदय में बड़ा सम्मान और प्रेम है परन्तु जिस वैध प्रस्थापना की परिभाषा उन्होंने प्रस्तुत की है उससे सम्मानपूर्वक विरोध प्रकट करना अपेक्षित है। उन्होंने जोर देकर यह कहा है कि संपत्ति जनता की है, लोक की है। मैं उनके शब्दों को ज्यों का त्यों उद्धृत नहीं करता हूं पर उन्होंने जो कुछ कहा है उसका आशय कुछ ऐसा था कि "संपत्ति जनता की है, और जनता उसे लेना चाहती है, अत: वह उसे ले सकती है; प्रतिकर तथा प्रतिकर की पर्याप्तता का इसमें कोई दखल नहीं है।" पर जैसा कि मैं निवेदन कर रहा हूं प्रतिकर की पर्याप्तता या उसका औचित्य और ऐसी ही समान बातें बहुत ही मुख्य हैं। जहां तक समस्त संभव संसार का संबंध है विधि यह है कि लोकप्रयोजनों के लिये जब आप संपत्ति लेते हैं तो आप उचित तथा पर्याप्त प्रतिकर दें।

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

केवल रूस में ऐसा है कि बिना प्रतिकर के अथवा केवल नाममात्र के प्रतिकर के संपत्ति ले ली जाती है। आज हम रूस के उदाहरण की नकल कर रहे हैं जो इस विषय का इस सभ्य संसार में एक अनोखा उदाहरण है। इस उदाहरण का हम अनुसरण करने जा रहे हैं। वास्तव में, जहां तक इस विषय से संबंध है इस अनुच्छेद के निर्माता और समर्थकों में कोई अन्तर नहीं है, सिवाय नीति के प्रवर्त्तन की रीति में। श्रीमान, इस विषय में साम्यवादियों और समाजवादियों में मैं विश्वास करता हूं और इस अनुच्छेद के समर्थक मध्य वर्ग तथा उच्च वर्ग का नाश कर देंगे और उन्हें मिटा देंगे। ये तीन कोटि के व्यक्ति अपने आदर्शों में परस्पर सहमत हैं, वे केवल इनके हल करने की रीति और इनको प्राप्त करने के व्यावहारिक उपाय में मतभेद रखते हैं। साम्यवादी बल तथा हिंसा प्रयोग द्वारा उनकी हत्या करेंगे, समाजवादी तर्क, भाषण और सिद्धान्त द्वारा उनकी हत्या करेंगे और यह विदित ही है कि प्रो. शाह ऐसा करेंगे ही और इस वर्तमान अनुच्छेद के प्रवर्त्तक वैध साधनों से उनकी हत्या करेंगे। इन सबकी अन्तिम इच्छा में वस्तुतः कोई अन्तर नहीं है। अब प्रश्न यह है। हम मार्ग के मध्य में हैं और मार्ग दो दिशाओं की ओर जाता है। जिस ओर बढ़ा जाये, प्रश्न यह है—उस ओर जिस ओर कि साम्यवादी बढ़े हैं या उस ओर जिस ओर समस्त सभ्य संसार बढ़ा है?

श्रीमान, आपके समक्ष संक्षेप में मैं संसार के समस्त भागों में प्रतिकर की विधि पर बयान दूंगा। यह पूरा विषय विस्तारपूर्वक ब्रिटेन की एनसाइक्लोपीडिया के अंक 6, पृष्ठ 177 से 179 तक प्रतिकर विषय के अन्तर्गत दिया हुआ है। उस सबको मैं लेना नहीं चाहता हूं। केवल कुछ बातों का जिक्र करना चाहता हूं। इस महान प्राधिकारी की सम्मति के अनुसार प्रतिकर उस सम्पत्ति के स्वामी को दी जाने वाली क्षतिपूर्ति या संतोष है जिसे राज्य अपने प्रयोजनों के लिये ले लेता है। वैयक्तिक स्वामित्व के अधिकार को रूस में चुनौती दी गई है जिसने निजी संपत्ति के अधिकार को मेट दिया है और बिना प्रतिकर के तत्कथित लोक प्रयोजन के लिये संपत्ति का हरण किया है। परन्तु अधिकतर सोवियत रूस से संयुक्त राष्ट्र को अपनी नीति उलटनी पड़ी। उन पर अब संप्रदाय का प्रभाव पड़ा है और इन राज्यों ने कुछ सुधार के नाम पर निजी संपत्ति को अपर्याप्त प्रतिकर देकर या बिना किसी प्रतिकर के ले लिया है।

श्रीमान, अब मैं संसार के अन्य भागों को लेता हूं। इनमें वैयक्तिक स्वामित्व को समस्त सभ्य संसार की केवल व्यवहार विधि में ही नहीं अपितु युद्ध तथा शांति दोनों कालों में राष्ट्रीय विधियों में भी माना गया है। उस प्रामाणिक पुस्तक में यह कहा गया है कि युद्ध काल के पश्चात् शांति संधियों में भी राष्ट्रों ने जिस एक सिद्धान्त का सम्मान किया था वह निजी संपत्ति की अक्षुण्णता थी। जहां तक व्यवहार विधि का संबंध है फ्रांसीसियों की व्यवहार संहिता में यह कहा गया है कि "लोक उपयोगिता के प्रयोजनों के और पर्याप्त प्रतिकर देने के अतिरिक्त अन्य किसी प्रकार से कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा।" बैल्जियम की विधि भी इसी प्रकार की है। इटली संहिता में कहा गया है कि राज्य द्वारा संपत्ति अर्जन करने के लिये उचित क्षति की पहले पूर्ति करना आवश्यक है। स्पेन

संहिता भी इसी प्रकार की है अर्थात् यह कि 'ठीक मूल्यन' के अनुसार प्रतिकर दिया जाना चाहिये। दक्षिणी अमरीका के राज्यों की विधि भी इसी प्रकार की है। जर्मन संहिता के अनुच्छेद 153 में यह कहा गया है कि 'पर्याप्त प्रतीक' दिया जाना चाहिये। संयुक्त राज्य (ब्रिटेन) की विधि यह है कि 'पूर्ण प्रतिकर' दिया जाना चाहिये। संयुक्त राष्ट्र अमरीका कहता है कि 'उचित प्रतिकर' दिया जायेगा।

***एक माननीय सदस्य:** आप दुबारा कह रहे हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** मैं एक बड़े प्रमाणित प्राधिकारी को उद्धृत कर रहा हूं और यह कह रहा हूं कि समस्त सभ्य संसार में यह विधि है। क्या हमें इस विधि का पालन करना चाहिये जिसका सभ्य संसार पालन कर रहा है अथवा हम संपत्तिहरण का रूस का तरीका अपनायें? प्रश्न यह है। जहां तक वर्तमान अनुच्छेद का संबंध है मैं कुछ शब्दों को प्रविष्ट करना चाहता हूं जैसे कि 'ठीक प्रतिकर' या 'पूर्ण प्रतिकर' या 'न्यायोचित प्रतिकर'। परन्तु एक माननीय सदस्य एक ऐसा ही संशोधन पहले ही पेश कर चुके हैं इस कारण मैंने अपने संशोधन को पेश नहीं किया चूंकि मेरे संशोधन में केवल शाब्दिक परिवर्तन का सुझाव था। सारभूत प्रश्न यह है कि क्या हम अपने संविधान में यह उपबन्ध करें कि जब कभी राज्य द्वारा लोक प्रयोजनों के लिये संपत्ति अर्जन की विधि बने तो उसमें हम यह उपबंध करें कि उस विधि में 'उचित तथा न्यायपूर्ण' प्रतिकर के लिये उपबंध हो। जैसा कि मैंने आपको अभी कहा था कल तक विधि इसी प्रकार की थी और इस बात का कोई स्पष्टीकरण अपेक्षित न था। परन्तु सभा में की गई कुछ घोषणाओं तथा कुछ खंडों तथा उपखंडों की भाषा के कारण मैं समझता हूं कि यह स्पष्टीकरण बहुत आवश्यक है। सच तो यह है कि यदि हम लोक प्रयोजनों के लिये बिना प्रतिकर के अथवा नाममात्र के प्रतिकर के निजी संपत्ति का हरण चाहते हैं तो इस बात को ठीक प्रकार से, पूर्ण रूप से तथा स्पष्ट रूप से कह देना चाहिये। इसके अलावा प्रतिकर देने का उपबंध दिया गया है। वह प्रान्तीय सरकार को यह स्वतंत्रता देता है कि वह नाममात्र के प्रतिकर पर भूमि हरण कर ले। इस अनुच्छेद में एक कमी है, भाषा संबंधी कमी है, यद्यपि सभ्य देशों में सदैव इसका अर्थ यही रहा है।

मैं निवेदन करता हूं। कि प्रतिकर पूर्ण, ठीक, न्यायोचित या पर्याप्त होना चाहिये। यदि हम ऐसा नहीं कहेंगे तो निजी संपत्ति के विरुद्ध बड़ी-बड़ी शैतानियां की जायेंगी। यदि हम निजी संपत्ति का सम्मान नहीं करेंगे तो मूल अथवा संविधानिक अधिकारों की सब बातें निष्फल हो जायेंगी। अनुच्छेद 13 हम पारित कर ही चुके हैं जिसके खंड (1) के उपखंड (1) में यह कहा गया है "कि समस्त नागरिकों को संपत्ति अर्जन, संधारण और यापन का अधिकार होगा।" जब हम संपत्ति अर्जन, संधारण और यापन का अधिकार देते हैं तो यह निष्कर्ष निकलता है कि यदि कोई व्यक्ति उसे ले तो उसका पूरा मूल्य दे।

राष्ट्रीयकरण के बारे में हम बातें सुनते हैं। यदि बिना मूल्य दिये राष्ट्रीयकरण किया जाता है तो उसका पतन एक प्रकार की सस्ती राष्ट्रीयता में होगा। जिस

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

आकलन के रूप को प्राप्त करने में हम सफल हुए हैं यह उसके व्यावहारिक नाश में सहायक होगा। यदि बड़ी-बड़ी लिमिटेड कंपनियों के उद्योगीकरण के लिये चन्दा मांगने हम जनता के पास जायें तो न कोई आकलन है और न धन। हमारे पूंजीवादी मर चुके हैं। हमें अब विवश होकर विदेशी बाजारों की ओर झुकना पड़ा है, केवल बड़ी राशियों का कर्ज लेने के लिये ही नहीं बल्कि हमारे देश में वाणिज्यिक उपक्रम करने के लिये प्रेरित करने के लिये भी। इस अनुच्छेद में कुछ खंडों का स्पष्ट उदाहरण है जो हमें स्पष्ट दिखाई देते हैं और जिनकी ओर मैं सभा का ध्यान आकर्षित करूंगा। क्या कोई विदेशी, जिसमें कुछ थोड़ा-सा चातुर्य्य तथा थोड़ी सी व्यापार बुद्धि है, हमारे देश के राष्ट्रीयकरण में अपना धन लगाने का विचार करेगा जिसके द्वारा उसे दो प्रकार की हानि होने की संभावना है? संपत्ति हरण के द्वारा उनकी पूंजी या पूंजी की वृद्धि में हानि अथवा अंशतः हानि होगी, यदि उनका व्यापार सफल होता है और फिर भारत के उद्योगीकरण में उसकी सहायता करने से वे अपने निजी व्यापार को अपने घर में खो देंगे। इन परिस्थितियों में भारत में विदेशी व्यापार की वृद्धि में दुहरी रुकावटें हैं।

इसके पश्चात् अनुच्छेद 13 का खंड (5) है जो कुछ निर्बन्धन विनिहित कर एक हद तक सीमा निर्धारित करता है। जिस निर्बन्धन का जिक्र है वह केवल यह है "सामान्य लोक के लिये इनमें से किसी अधिकार के प्रयोग पर युक्तियुक्त निर्बन्धन।" केवल यही शर्त है कि संपत्ति पर अपने अधिकार का मुझे लोक के अहित में प्रयोग नहीं करना चाहिये। अनुच्छेद 13 में संपत्ति के अधिकार पर विचार नहीं किया गया है। मैं निवेदन करता हूं कि इस विषय में अनुच्छेद 24 अनुच्छेद 13 का प्रत्यक्ष विरोध करेगा, जैसा कि मैंने पहले वाद-विवाद के अन्तर्गत एक औचित्य प्रश्न के सिलसिले में कहा था कि अप्रासंगिक होने का हमें अधिकार है। जो औचित्य प्रश्न उठाया गया था वह वास्तविक नहीं था। अन्याय का वह एक स्पष्ट उदाहरण था जिसका माननीय सदस्य ने उस औचित्य प्रश्न के उठाने में सहारा लिया था। यदि हम इस अनुच्छेद के खंड (4) को स्वीकार कर लेते हैं तो घोर अन्याय जड़ पकड़ जायेगा। इस कारण मैंने उस माननीय सदस्य का घोर विरोध किया था जिसने औचित्य प्रश्न उठाया था। परन्तु मैं इस बात में उनसे पूर्ण सहानुभूति रखता हूं तथा सहमत हूं और उनके इस विचार को अपना निर्बल समर्थन प्रदान करता हूं कि यह खंड बहुत ही बुरा है जो एक बहुत बड़ी मात्रा में अन्याय कायम करेगा।

उस मुख्य भाव को लीजिये जो इन संशोधनों के पीछे छिपा हुआ है और वह है जमींदारी का उन्मूलन। किसी कारणवश कुछ लोग सोचते हैं कि जमींदारी संपत्ति कोई संपत्ति नहीं है और उसका हरण इस मूर्खतापूर्ण आधार पर बिना किसी प्रकार की दया या प्रतिकर के किया जा सकता है कि वह लोक लाभ के लिये हितकर होगा, मानो जमींदार तो लोक का अंग ही नहीं है। यहां मैं यह स्पष्ट कह दूं कि मैं जमींदार नहीं हूं और न जमींदारों में मेरा कोई हित है।

***श्री बी. दास:** मैं समझता हूं कि आप जमींदार हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्री दास कहते हैं कि वे समझते थे कि मैं ज़मींदार हूं.....

***एक माननीय सदस्य:** वे चाहते होंगे कि आप इस कल्पना से आनन्द उठायें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** श्री दास बहुत सी ऐसी बातों को सोच लेते हैं जो असत्य हैं। मैं एक बहुत छोटा सा जमींदार था, पर मैंने उसे 5 या 6 वर्ष पूर्व बेच दिया चूंकि मैंने इस बात का आभास कर लिया था कि क्या होने वाला है। आज मैं स्वाधीन, स्वतंत्र तथा मोह से परे हूं और एक ऐसा व्यक्ति हूं जिसका इस विषय में कोई स्वार्थ नहीं है। मैं सुरक्षित तथा प्रसन्न हूं। पर वे बिचारे जमींदार जो देश की विधि के सुदृढ़ाधार में विश्वास करते थे वे आज दुखी हैं, पर अधिक समझदार हो गये हैं। इस काम में हमें संपत्ति के अधिकार इत्यादि के संविधानिक सिद्धान्तों पर चलना चाहिये। यदि यह आवश्यक है कि जमींदारी अर्जित की जाये और इस के प्रति कोई संदेह भी नहीं है तो जिस वस्तु की मैं मांग करता हूं वह केवल यह है कि समुचित प्रतिकर दिया जाये। जब इंग्लैंड की बैंक का राष्ट्रीयकरण किया गया था तो अंशदाइयों को पूर्ण प्रतिकर दिया गया था। भारत में जब हमने रिजर्व बैंक का राष्ट्रीयकरण किया था उस समय यद्यपि मंदी थी फिर भी हमने बाजार भाव का पूरा मूल्य दिया था। प्रश्न यह है कि क्या जमींदारी संपत्ति अन्य संपत्तियों से भिन्न है जिससे कि इसके साथ हम सौतेला व्यवहार करें? जमींदार संख्या में बहुत कम हैं और बिखरे पड़े हैं। उनके पास संतोष करने के लिये किसान हैं और सरकार अपने को ऐसी दुखद स्थिति में समझती है कि वह उनको मार सकती है और उनकी मृत्यु पर किसी को शोक नहीं होगा। यदि हम नागरिक अधिकारों को मेट देते हैं तो इसका यह प्रभाव होगा कि शीघ्र ही वह हम को ही जकड़ेगा।

जमींदारी संपत्ति के संबंध में हमें यह जानना चाहिये कि उसका क्या आशय है। हिंदू राजाओं के काल में जमींदार नाम की कोई वस्तु नहीं थी। मुस्लिम काल में प्रशासनीय आवश्यकता के आधार पर उनका स्वत: ही सृजन हो गया। परिस्थितिवश सैनिक, राज्यपाल, विधि तथा व्यवस्था के बनाये रखने, सैनिक चौकियों को बनाये रखने और स्थानीय क्षेत्रों के राजस्व से अपना निर्वाह करने के लिये भारत के सुदूरवर्ती कोनों में भेजे गये।

***श्री विश्वनाथ दास:** इस इतिहास को हम सब जानते हैं।

***अध्यक्ष:** माननीय सदस्य को याद रखना चाहिये कि आज रात तक हमें इस अनुच्छेद पर वाद-विवाद समाप्त कर देना है। ये सारा वाद-विवाद रुचिकर हो सकता है पर हमें अपने विचार अनुच्छेद तक ही सीमित रखने चाहियें।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** सभा के समक्ष जिस बात पर मैं जोर दे रहा हूं वह यह है कि जमींदारी संपत्ति भी अन्य संपत्ति के समान है। मुगल बादशाहों

[श्री नज़ीरुद्दीन अहमद]

के लिये लगान वसूल करने उस लगान से अपना निर्वाह करने में सुविधा होने के कारण जमींदारों का अपने आप सृजन हो गया और लगान वसूल करने के लिये कई लोगों ने स्वत: अपनी सेवायें अर्पित कीं। इन प्रारंभिक रूपों में जमींदारियां बनीं। अन्य संपत्तियों के समान जमींदारी भी हस्तान्तरणीय थी और राजस्व के जल्दी वसूल करने के लिये शुरू-शुरू के अंग्रेजी प्रशासकों ने बकाये के लिये जमींदारी की बिक्री का उपबन्ध किया था। जमींदार साधारण संपत्ति के समान है। वर्तमान जमींदारों ने उसके लिये नकद रुपया दिया है। अत: बिना पर्याप्त प्रतिकर के यदि हम जमींदारी को जब्त कर लेते हैं तो हम किसी भी व्यापार, कार्य अथवा लिमिटेड कंपनी को इस तत्कथित आधार पर जब्त कर सकते हैं कि वे 'लोक हित' के लिये होंगी। ऐसी बहुत सी संपत्तियां तथा व्यापार, कार्य हैं जो लोगों के पास आंधी के फल की तरह से आ गई हैं। यदि उन्हें आंधी के फल के समान भी कोई अधिकार प्राप्त हो चुका है तो क्या यही कोई आधार है कि बिना प्रतिकर दिये लोक लाभ के लिये इन संपत्तियों को जब्त कर लिया जाये? मैं निवेदन करता हूं कि नहीं। तो फिर जमींदारी संपत्ति के विषय में यह विभेद क्यों? संशोधन संख्या 406 में प्रतिकर देने पर मैंने एक सीमा निर्धारित की है। मैंने उसे जमींदारों की शुद्ध वार्षिक आय का बारह गुना रखा है। वास्तव में तो इन संपत्तियों के मूल्यन का साधारण नियम यह है कि 5 प्रतिशत आय के आधार पर वह 20 गुना हो। पर शुद्ध वार्षिक लाभ का मैं 12 गुना ही रखूंगा। वह पूर्ण जब्ती और.....।

***श्री विश्वनाथ दास:** श्रीमान, एक औचित्य प्रश्न है। हम प्रतिकर के प्रश्न पर वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं। हम संशोधित अनुच्छेद 24 पर वाद-विवाद कर रहे हैं जिसमें विधि का उपक्रम करने के लिये प्राधिकार का उपबन्ध किया जा रहा है। अत: इन सब बातों की कोई आवश्यकता नहीं है।

***अध्यक्ष:** प्रतिकर के संबंध में कोई निश्चित अंक निर्धारित कर भावी विधान के स्वविवेक को माननीय सदस्य सीमित करना चाहते हैं और मैं समझता हूं कि ऐसा करने में वे पूर्णतया नियमानुकूल हैं।

***श्री नज़ीरुद्दीन अहमद:** इस स्पष्टीकरण के लिये, श्रीमान, मैं आपका कृतज्ञ हूं। श्री विश्वनाथ दास ने न तो इस संशोधन को समझा है और न मेरे भाषण को। न्यूनतम प्रतिकर की राशि मैं 12 गुना सीमित करना चाहता हूं। उदाहरणार्थ संयुक्त प्रान्त, वे 8 गुना देना चाहते हैं। मैं उसे 12 गुना करना चाहता हूं। संयुक्त प्रान्त के विधान में एक और कमी है। आय में से अनुमानित कृषि आय-कर काट लिया जायेगा। अनुमानित कृषि आयकर अभी-अभी पुर:स्थापित किया गया है। यह आधा अथवा उच्चतर आय क्षेत्रों में बड़े-बड़े जमींदारों के लिये आधे से भी अधिक है। इस दशा में वार्षिक आय के आठ गुने से आशय वार्षिक आय के चार गुने से है। यह आठ गुना तो अत्युक्ति पूर्ण तथा कल्पनात्मक अंक है। वास्तव में तो वह बहुत ही कम है। अत: खंड (2) के परन्तुक द्वारा मैं एक सीमा निर्धारित करना चाहता हूं।

दूसरी बात जिसकी ओर मैं ध्यान आकर्षित करना चाहता हूं वह खंड (4) का अपमार्जन है। यदि हम उसको रखेंगे तो प्रभाव यह होगा कि कोई विधि जो

पारित कर दी जाती है। और उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त हो जाती है तो वह विनियमित हो जायेगी, पर ऐसी कोई विधि जो अभी तक पारित नहीं हुई है या एतत्पश्चात् पारित होगी उसकी ऐसी लाभदायक स्थिति नहीं होगी। अतः जिन प्रान्तों ने पहले से विधि पारित कर ली है वे अधिक लाभदायक स्थिति में रहेंगे। खंड (2) में अपेक्षित रीति के अनुसार उन्हें प्रतिकर नहीं देना पड़ेगा। उन प्रान्तों में परस्पर जो इस दौड़ में प्रथम हैं और जो बाद में शरीक हुए हैं इस आधार पर यह विभेद क्यों करना चाहिये? प्रतिकर का सिद्धान्त सबके लिये अनिवार्य है। केवल इस आधार पर कि इस कार्य को पहले ले चुके हैं प्रान्तों में परस्पर कोई विभेद नहीं होना चाहिये।

खंड (5) के एक अन्य संशोधन के प्रति जिन सिद्धान्तों को पेश करना मैंने चाहा है उनको प्रभावी बनाने के लिये वह एक शाब्दिक परिवर्तन के रूप का है।

इसके बाद खंड (6) पर एक संशोधन है जो प्रतिकर के प्रश्न पर गंभीर प्रभाव डालेगा। इस खंड में कहा गया है कि इस अनुच्छेद के खंड (2) के होते हुए भी अर्थात् इस बात के होते हुए भी कि उसमें कैसे भी प्रतिकर के लिये उपबन्ध न हो, जो विधियां एक वर्ष के अन्तर्गत पारित हो जाती हैं वे मान्य होंगी। ये विषय पर्याप्त प्रतिकर देने पर निर्भर करते हैं। यदि हम वास्तव में उचित प्रतिकर नहीं देते हैं तो यह एक बड़ा अन्याय होगा और खंड (6) और (4) की ऐसी रचना की गई है कि वे स्पष्ट तथा आवश्यक सूचना नहीं देते हैं। इन विभेदात्मक उपबन्धों के उद्देश्य का किसी न किसी को अनुमान लगाना होगा। वास्तविक प्रयोजन को छिपा लिया गया है। यदि प्रतिकर का सिद्धान्त एक प्रान्त के लिये अनिवार्य है तो वह सब प्रान्तों के लिये अनिवार्य होना चाहिये। यदि किसी प्रान्त ने कोई ऐसी विधि बनाई है जो इस सिद्धान्त का उल्लंघन करती है तो उस सीमा तक वह उस शक्ति से बाहर तथा शून्य होनी चाहिये। अनुच्छेद 24 को हम मूलाधिकारों के अध्याय में रख रहे हैं और खंड (2) में हमने यह उपबन्ध किया है कि जब कोई ऐसी विधि पारित की जाती है जो इन अनुच्छेदों के मूल सिद्धान्तों का पूर्णतः अथवा अंशतः खंडन करती है तो उस सीमा तक वह विधि शून्य हो जायेगी। अतः जिन प्रान्तों ने खंड (2) के सिद्धान्तों की उपेक्षा की है, उनके लिये कोई अपवाद क्यों होना चाहिये? ये सिद्धान्त अटल हैं और सब दशाओं में इनका पालन होना चाहिये और यदि कोई उल्लंघन करता है तो वह जान बूझ कर एक पुष्ट सिद्धान्त का उल्लंघन करता है और उसे क्षमा नहीं करना चाहिये। मैं यह निवेदन करता हूं कि प्रतिकर की विधि समान रूप से सब पर लागू होनी चाहिये। मुझे बड़ा खेद है कि जितना समय मुझे लेना चाहिये था उस से मैंने कुछ अधिक समय लिया, पर मुझे विश्वास है कि सभा में इस विषय पर अधिक ध्यान नहीं दिया जा रहा है और अधिक समय तक बोलने का कारण यही है।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 409—श्री भारती!

***श्री एल. कृष्णास्वामी भारती** (मद्रास : जनरल): पेश नहीं कर रहा हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 416, 417 और 421 उन संशोधनों में आ जाते हैं जो पेश हो चुके हैं। संशोधन संख्या 423।

***श्रीमती पूर्णिमा बनर्जी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उप खंड (ख) में 'property' शब्द के पश्चात् 'or for ensuring full employment to all and securing a just and quitable economic and social order' शब्द जोड़ दिये जायें।"

श्रीमान, जिस उद्देश्य से मैं यह संशोधन पेश कर रही हूं वह यह है कि उन खंडों तथा सिद्धान्तों को प्रभावी बनाया जाये जिनको हम राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्त निर्धारित करते समय पारित कर चुके हैं। जहां हम यह कह चुके हैं कि राज्य एक ऐसा समाज बनाने का प्रयत्न करेगा जिसमें आर्थिक, राजनैतिक और सामाजिक न्याय राज्य की समस्त संस्थाओं को अनुप्राणित करेगा। हम यह कह चुके हैं कि नर और नारियों के लिये जीविकोपार्जन के पर्याप्त साधनों की व्यवस्था की जायेगी और देश के आर्थिक साधनों का इस प्रकार संचालन किया जायेगा कि उसका केन्द्रीकरण चन्द व्यक्तियों में न हो और उसका संचालन जनसाधारण के लिये अहितकारी न हो। जिस समय इन खंडों पर विचार किया जा रहा था हमने यह सोचा था—हममें से कुछ ने बड़े गम्भीर रूप में सोचा था कि मूलाधिकार में जीविकोपार्जन के अधिकार, सम्मानपूर्वक रोटी कमाने के अधिकार की प्रत्याभूति सब लोगों को दी जाये। पर उस समय हमने यह सोचा कि ऐसा करने के लिये समाज की एक नई व्यवस्था बनानी पड़ेगी जिसमें कदाचित् कुछ समय लगेगा और इस कारण जीविकोपार्जन का अधिकार राज्य नीति के निदेशक सिद्धान्तों में शामिल किया गया। इन सिद्धान्तों को हम नितान्त आवश्यक तथा भविष्य में अपने वास्तविक पथ प्रदर्शक समझते हैं। इस कारण संपत्ति अधिकारों से संबंध रखने वाले इस अनुच्छेद में उपबन्ध नहीं किये जाते हैं और भावी राज्य की आर्थिक नीति यदि किसी प्रकार से शृंखलाबद्ध तथा कड़ी कर दी जाती है तो हम समझते हैं कि जो अनुच्छेद हम पार कर चुके हैं उनमें हम सफलता प्राप्त नहीं कर सकेंगे।

संयुक्तप्रान्त के विधान जमींदारी उन्मूलन विधेयक का जिक्र किया गया है। शायद हम में से कुछ लोगों को याद होगा कि उस समय हमने भी यह संकल्प पार किया था कि संयुक्त प्रान्त की सभा पूंजीवाद के मिटाने के लिये वचनबद्ध है। यदि उस संकल्प का प्रभावी अर्थ है और यदि हमें इस बात का ध्यान रखना है कि देश इस प्रकार से उन्नति करे कि जिससे जनसाधारण के हित के लिये राज्य के साधनों का सदुपयोग को तो यह बहुत ही आवश्यक है कि जब लोक कल्याण के लिये ऐसी मांग हो तो हम ऐसा कर सकें। यह उपबंध होना चाहिये कि प्रतिकर दिया जाये, क्योंकि यह सिद्ध हो चुका है कि प्रतिकर देने के लिये हम सब उत्सुक हैं, पर यदि हम ऐसा करने में असमर्थ हैं तो खंड में यह उपबन्ध होना चाहिये कि बिना प्रतिकर के संपत्ति ली जा सके। हम यह देखने के लिये उत्सुक हैं कि समाज में शान्तिपूर्वक परिवर्तन हो अतः इस बात का कोई भय नहीं कि हम किसी को अधिकार च्युत कर देंगे। जैसा कि आपने देखा होगा संयुक्त प्रान्त का जमींदारी उन्मूलन विधेयक जमींदारों

को केवल प्रतिकर ही नहीं देता है वरन् पुनर्वासन अनुदान भी देता है। अतः यह सिद्ध होता है कि बदला लेने की भावना से सभा भविष्य में प्रकार्य न कर सकती है और न करेगी ही और जो नई व्यवस्था की जायेगी वह मनमाने रूप में नहीं की जायेगी, इस भावना को रखते हुए यदि ऐसा अवसर आये और सम्भवतः ऐसा अवसर आयेगा, जबकि देश में प्रचलित पूंजीवाद प्रणाली को सार्वजनिक कल्याण के लिये हाथ में लेना पड़े तो यहां एक ऐसा उपबन्ध होना चाहिये जिससे कि वह संविधान समस्त भावी प्रगति की व्यवस्था कर सके और इस प्रकार जनता से उचित सम्मान प्राप्त कर सके और अपने में भावी उन्नति के लिये उन बीजों को रख सके जिस पर हमारे देश का कल्याण निर्भर है। इन शब्दों में मैं अपना संशोधन पेश करती हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 424 किसी संशोधन में आ गया है। संख्या 428।

***श्री कला वैंकट राव** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) में 'one year' शब्दों के स्थान में 'eighteen months' रख दिये जायें।"

अपनी ओर से इसके कारण एक और विषय पर भाषण देने के पश्चात् अन्त में मैं बताऊंगा जो इस खंड से संबंधित है। मैं समझता हूं कि माचियावेली ने यह कहा है कि कोई व्यक्ति अपने पिता के हत्यारे को क्षमा कर सकता है पर उस व्यक्ति को क्षमा नहीं कर सकता जो उसकी संपत्ति को छीनता है। शायद यही कारण है कि इस विषय पर यहां तथा अन्यत्र इतना वाद विवाद हुआ है। संपत्ति एक प्रकार की ही नहीं है, संपत्ति कई प्रकार की है। श्रीमान्, आपको तथा माननीय सदस्यों को विशेषकर यह कहूंगा कि इस अनुच्छेद के खंड (4) और (6) में एक विशेष प्रकार की संपत्ति अर्थात् जमींदारी संपत्ति की ओर निर्देश किया गया है। मेरा वास्तव में यह ख्याल है कि इस विशिष्ट प्रकार के लिये 'संपत्ति' शब्द का प्रयोग ही नहीं करना चाहिये क्योंकि 1802 या इससे पूर्व बंगाल में जब सनद की गई थी जिस समय कि स्थायी बन्दोबस्त पुरःस्थापित किया गया था तो मिल्कियत इस्तमरारी सनद ने जमींदार को केवल लगान वसूल करने का अधिकार दिया था। लगान वसूल करने के लिये वे केवल अभिकर्त्ता थे और उनसे उस लगान का एक अंश पेशखास के रूप में सरकार को देने के लिये कहा गया था। अतः यह धारणा कि इस कारबार में जमींदारों को संपत्ति का अधिकार है सत्य से परे है। यह एक प्रसिद्ध कहावत है कि जिस वस्तु पर किसी व्यक्ति का स्वयं कब्जा नहीं है उसे वह किसी अन्य व्यक्ति को नहीं दे सकता है। अनादि काल से इस देश की परम्परा और विधि यही रही है कि कृषक अथवा समाज जिसका वह सदस्य है वह उस गांव या किसी विशेष संपत्ति का स्वामी है। अतः जब कि केवल लगान वसूल करने का अधिकार जमींदार को दिया गया था तो यह कदापि नहीं कहा जा सकता है कि इन सज्जनों को एक प्रकार की संपत्ति प्रदान की गई थी क्योंकि स्वयं अधिकार देने वाले का उस भूमि पर कोई संपत्ति अधिकार नहीं था।

[श्री कला वैंकट राव]

दूसरी बात यह है कि आरम्भ से ही लगान वसूल करने के अधिकार को भी निर्बन्धित कर दिया गया था। 1802 के विनियम संख्या 25 द्वारा मद्रास में 13 जुलाई, 1802 को मिल्कियत इस्तमरारी की सनद दी गईं थीं। उसी दिन चार और अधिनियम निकाले गये थे। पट्टा विनियम कहे जाने वाले विनियम संख्या 30 में यह निश्चित रूप से कहा गया था कि प्रत्येक पट्टादार से जो लगान उगाया जायेगा वह वहीं होना चाहिये जो उस तिथि को था और उसमें कोई परितर्वन नहीं होना चाहिये। 'अपरिवर्तनीय' शब्द का प्रयोग 1802 के विनियम संख्या 30 में हुआ था। उसी दिन तथा उसी सरकार द्वारा विनियम प्रस्थापित होने के कारण हमें इस परिणाम पर पहुंचना पड़ेगा कि यद्यपि सनद द्वारा लगान लगाने का अधिकार उसे दिया गया था पर उसी दिन के एक और विनियम में यह कहा गया था कि किसी विशिष्ट पट्टादार द्वारा दिये जाने वाले लगान को जमींदार न बढ़ायें। एक बड़े संघर्ष के पश्चात् इस बात को 1802 के विनियम संख्या 5 द्वारा स्पष्ट किया गया था जिसमें यह निश्चित रूप से कहा गया था.....।

***श्री अल्लादी कृष्णास्वामी अय्यर** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, एक औचित्य प्रश्न है कि क्या इस अनुच्छेद के मसौदे के खंड (4) और (6) पर विचार करते हुए जमींदारी के सम्पूर्ण इतिहास को लेना हमारे लिये हितकर है?

***श्री कला वैंकट राव:** इस सभा में ही यह प्रश्न पूछा गया है कि जमींदारी संपत्ति के बारे में किसी प्रकार का विभेद क्यों किया जाये जैसा कि खंड (4) और (6) में स्पष्ट है। मेरी धारणा यह है कि जमींदारी संपत्ति ही नहीं है और इस कारण अन्य प्रकार की संपत्तियों से इसमें विभेद होना चाहिये। इतिहास के अपने ज्ञान के आधार पर तथा जमींदारी संबंधी विधान के आधार पर मैं यह जोर देकर कह सकता हूं कि जैसा हमें अन्य संपत्ति की श्रेणियों के बारे में विदित है इसको सच्ची संपत्ति कभी नहीं समझा गया।

मैं इसे उदाहरण देकर स्पष्ट करूंगा। और मैं आपको वह बात कह रहा हूं जो हमारे मुख्य राज्यपाल ने कही थी जब उन्होंने सन् 1939 में मद्रास विधान-सभा में भू-संपदा समिति के प्रतिवेदन पर वाद-विवाद में भाग लिया था। मान लीजिये कि दिल्ली के निकट गांव में मेरा एक घर है। मान लीजिये मैं बी.एल. परीक्षा में उत्तीर्ण हो गया और अपनी वकालत आरम्भ करने के लिये दिल्ली आ रहा था। मैंने वह मकान श्री मुंशी को किराये पर दिया और ये कहा कि "आप प्रति मास 8 रुपये किराया मुझे दिया करें।" मैं वहां से चलने ही वाला था कि मुझे श्री कृष्णास्वामी अय्यर मिले और उनसे मैंने कहा कि "श्री मुंशी से प्रति मास 8/- रुपये ले लिया करिये और मुझे 6/- रुपये भेज दिया करिये और उसमें आपको जो कष्ट होगा उसके लिये कमीशन के रूप में 2/- रुपये आप ले लिया करिये।" दस वर्ष बाद मैं अपने स्थान पर वापस गया और मैंने देखा कि छत पर कुछ टाइलें थीं अथवा फर्श पर सीमेंट बिल्कुल न रहा मैंने श्री मुंशी से पूछा "यह क्या बात है कि आपने मेरे घर की यह बुरी दशा कर रखी है यद्यपि मैंने आपको 8/- रुपये, एक बहुत ही कम किराये पर मकान दिया था।" श्री मुंशी ने मुझे

उत्तर दिया–"मैं इस मकान के लिये 24/- रुपये हमेशा देता रहा और श्री कृष्णास्वामी अय्यर सदैव यह किराया मुझसे लेते रहे।" 8/- रुपये से 24/-रुपये तक की वृद्धि अप्राधिकृत थी और वह हमेशा उस व्यक्ति की जेब में गई जिससे मैंने किराया उघाने के लिये कहा था। फल यह हुआ कि इस वृद्धि से न तो किरायेदार और न मकान मालिक को कोई लाभ हुआ। इस 16/- रुपये के फर्क को वे सज्जन अपनी जेब में रखते गये जो केवल किराये उघाने वाले थे। यदि इस व्यापार में तत्कथित संपत्ति नाम की वस्तु श्री कृष्णास्वामी अय्यर को मिल सकती है तो जमींदारों के पास भी संपत्ति है।

मद्रास में सन् 1802 में सब संपदा का कुल लगान 72 लाख रुपया था जिसमें से पेशकश के रूप में 48 लाख रुपया सरकार को दे दिया जाता था। इस समय मद्रास के जमींदार 219 लाख रुपया लगान के रूप में वसूल करते हैं पर आज भी वही 48 लाख रुपये पेशकश के रूप में सरकार को देते हैं। इस कारण मैं यह कहता हूं कि वस्तुतः यह संपत्ति नहीं है अतः इस पर भिन्न रूप में विचार करना चाहिये।

इसके पश्चात् इस संबंध में मुझे यह कहना है कि जमींदार ने अपने आभारों का निर्वहन सदैव उस रूप में नहीं किया जिस रूप में वे सनद में नियत किये गये थे। यह निर्धारित किया गया था कि सिंचाई के साधन इत्यादिकों का वह पोषण करेगा। उसने ऐसा कोई कार्य कभी नहीं किया। सिंचाई के समस्त साधन बिगड़े पड़े हैं और रैयत बिना कुछ हित के लगान बढ़ा दिये गये। श्री वेबलन ने "कुछ नहीं की एवज में कुछ पाने की बिक्री के योग्य अधिकार" के रूप में संपत्ति में रूढ़गत स्वार्थों की परिभाषा की है। सूचना देकर लगान उघाने के इस प्राधिकरण को हम समाप्त कर सकते थे पर हम प्रतिकर दे रहे हैं और इस लिये उन्हें चाहिये कि हमें धन्यवाद दें। बहुत से जमींदार मुगल राज्य के पतन काल में बन गये थे जबकि दुर्व्यवस्था थी। आज हम उनको विधि अनुसार प्रतिकर देना चाहते हैं। बिहार को 130 करोड़ देना है; संयुक्त प्रान्त को भी ऐसी ही बड़ी राशि देनी है और मद्रास को $15^1/_2$ करोड़ देना है। यह सब धन जमींदारों के पास जायेगा चूंकि उनके पास सनद हैं। इन सनदों को हम रद्दी कागज नहीं समझ रहे हैं। सच तो यह है कि हम उन्हें बीजक समझ रहे हैं। इन बीजकों का हम वह मूल्य दे रहे हैं जो इनके इतिहास से संबंधित है और जो न्यायोचित है। अतः मेरी धारणा यह है कि प्रत्येक दृष्टिकोण से जमींदारी अधिकार के नाम से कही जाने वाली संपत्ति के प्रकार पर हमें उन साधारण प्रकार की संपत्ति से भिन्न रूप में सोचना पड़ेगा जिनको हम सामान्यतया देखते हैं।

अनुकूलित भारत शासन अधिनियम की धारा 299 में कुछ परिवर्तन करके वर्तमान अनुच्छेद के रूप में उसका फिर से मसौदा बना दिया गया है। मुख्य परिवर्तन केवल यह है कि 'देना' शब्द छोड़ दिया गया है। एक प्रसिद्ध स्मृतिज्ञ की यह धारणा है कि जब तक 'देना' शब्द वहां पर है हमें देश के ग्राह्य सिक्के में ही प्रतिकर देना होगा अतः नकद प्रतिकर देना होगा। अतः बहुत से प्रान्तीय विधान-मंडलों को हानि होगी। और इस खंड के अधीन यह राशि हुंडियों में दी जा सकती है। अतः प्रान्तीय सरकारें शीघ्र ही प्रतिकर की प्रथम किश्त देने के प्रश्न पर पुनः विचार कर सकती हैं। यह सत्य है कि हुंडियों के रूप में इस प्रकार से भुगतान

[श्री कला वैंकट राव]

करना प्रान्तीय सरकारों के लिये लाभदायक होगा, विशेषकर मद्रास में जहां कि धारा 50 में अन्तर्वर्ती भुगतान के लिये उदारतापूर्ण उपबन्ध है। यदि किसी संपदा की आय 6 लाख है तो आधारभूत वार्षिक राशि एक लाख होगी। जब तक हम पूरा प्रतिकर नहीं दे सकेंगे तब तक हमें एक लाख देना होगा। और ये राशियां प्रतिकर का भाग नहीं होंगी। यदि हम धन या हुंडी के रूप में इस समय भुगतान करते हैं, तो ब्याज के रूप में हमें अधिक लाभ होगा।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य को यह याद दिलाऊंगा कि यहां हम मद्रास के विधेयक पर वाद-विवाद नहीं कर रहे हैं।

***श्री कला वैंकट रावः** श्रीमान, मैं केवल उदाहरण दे रहा हूं।

***अध्यक्षः** मैं जानता हूं कि वे वहां पर राजस्व मंत्री थे और उस विधेयक के संबंध में अन्य किसी व्यक्ति से अधिक जानते हैं। पर उस ज्ञान का लाभ वे इस सभा को न दें। वे अपने आपको अनुच्छेद तक ही सीमित रखें।

श्री कला वैंकट रावः श्रीमान, मैं अभी समाप्त करता हूं। कुछ वर्षों तक अन्तर्वर्ती भुगतान के रूप में एक लाख रुपया प्रति वर्ष की दर से देने की अपेक्षा हम हुंडियों पर केवल 30,000/- रुपया ब्याज के रूप में देंगे।

मैं केवल एक बात और कहना चाहूंगा। प्रतिकर अथवा प्रतिकर के सिद्धान्त नियत करने का संसद का अधिकार अक्षुण्ण रखना चाहिये। केवल विधि के साथ छल-कपट करने पर ही न्यायालय उस विषय में हस्तक्षेप कर सकती है।

श्रीमान्, जैसा कि आपने बताया था इनके पूर्ण विवरण में जाना मेरे लिये न्यायसंगत नहीं है। मैं केवल यह बताने का प्रयास कर रहा था कि जमींदारी संपत्ति एक भिन्न प्रकार की संपत्ति है और इस कारण खंड (4) और (6) में उस पर ठीक विचार किया गया है।

इस संबंध में मैं अपने मित्रों को वह बात कहना चाहूंगा जो श्री फोस्डिक ने कही थी "इतिहास की धारा हमें भविष्य की ओर बहाये ले जा रही है और यह मायाजाल, की प्रतिभूति परिवर्तन के अभाव पर निर्भर है, असंतुलन का शायद एक बड़ा ही भयानक रूप है जो लोगों की बुद्धि को कष्ट देता है।" इन चन्द शब्दों में मैं प्रस्तावक महोदय से प्रार्थना करता हूं कि खंड (6) में 'एक वर्ष' के स्थान में 'अठारह मास' रखने के मेरे संशोधन को स्वीकार करें और इसका कारण केवल यह है कि यदि यह संविधान 26 जनवरी, 1950 को प्रवृत्त नहीं होता है तो मद्रास विधेयक के लिये कुछ कठिनाई हो जायेगी। जिसको मार्च सन् 1949 में अनुमति मिली है। यदि प्रस्तावक महोदय मेरा संशोधन स्वीकार कर लेते हैं तो यह कठिनाई दूर हो जायेगी। मेरा संशोधन केवल औपचारिक संशोधन है और प्रस्तावक महोदय से इसे स्वीकार करने के लिये मैं प्रार्थना करता हूं।

श्रीमान, आपको धन्यवाद।

***माननीय श्री कृष्ण वल्लभ सहाय** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं अपना संशोधन पेश नहीं करता हूं। यदि माननीय प्रस्तावक महोदय श्री कला वैंकट राव द्वारा पेश किये गये संशोधन को स्वीकार कर लेंगे तो मेरे उद्देश्य की पूर्ति हो जायेगी।

***श्री जसपतराय कपूर** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (6) के पश्चात् यह नवीन खंड जोड़ दिया जाये।

'(7) The provisions of clause (2) of this article shall not apply to any property belonging to evacuees to the territory now included in Pakistan and declared as evacuee property by any law promulgated to deal with such property in the event of failure of any agreement being arrived at between India and Pakistan on the subject of property belonging to evacuees to both the countries.' "

[(7) इस अनुच्छेद के खंड (2) के उपबन्ध इस समय पाकिस्तान में सम्मिलित राज्य क्षेत्र को गये विस्थापितों की किसी उस संपत्ति पर लागू नहीं होंगे जो उस संपत्ति पर विचार करने के लिये प्रख्यापित किसी विधि द्वारा, दोनों देशों के विस्थापितों की संपत्ति के विषय पर भारत और पाकिस्तान में किसी करार के न होने के कारण, विस्थापित संपत्ति घोषित की जा चुकी है।]

'संप्रदाय' शब्द गलती से 'देशों' शब्द के स्थान पर लिखा गया है।

श्रीमान, इसी विषय पर एक और संशोधन है जिसे मैं भेज चुका हूं, वह संख्या 510 पर है। वह इस प्रकार है:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) के पश्चात् यह नया उपखंड जोड़ दिया जाये:

'(c) the provision of any law already enacted or which may be enacted for the administration or disposal of any property which may under or for the purpose of that law be regarded as evacuee property.' "

[(ग) किसी ऐसी विधि के उपबंध जो किसी उस संपत्ति के प्रशासन या यापन के लिये अधिनियमित किये जा चुके हैं या अधिनियमित होंगे जो इस विधि के अधीन या उसके प्रयोजन के लिये विस्थापित संपत्ति समझी जाये।]

[श्री जसपतराय कपूर]

श्रीमान, इन दोनों संशोधनों पर माननीय श्री गोपालस्वामी आयंगर से वाद-विवाद करने का अवसर मुझे मिला था और उस वाद-विवाद के फलस्वरूप हम इस परिणाम पर पहुंचे कि इन संशोधनों के प्रयोजन की पूर्ति भले प्रकार से हो जायेगी यदि संशोधन संख्या 510 में थोड़ा सा परिवर्तन कर दिया जाये अतः इस दुबारा बनाये गये मसौदे को पेश करने की मैं आपसे अनुज्ञा चाहता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन को पढ़िये।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) के अन्त में 'or' शब्द जोड़ दिया जाये।"

ये केवल औपचारिक बात है, मुख्य बात ये है–

"कि प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) के उपखंड (ख) के पश्चात् यह उपखंड जोड़ दिया जाये:

'(c) the provisions of any existing law made or of any law that the State may hereafter make in pursuance of any agreement arrived at with a foreign State or otherwise with respects to property declared by law to be evacuee property.' "

[(ग) विधि द्वारा विस्थापित संपत्ति घोषित की गई संपत्ति के संबंध में किसी विदेशी राज्य से अथवा अन्यथा किये गये करार के पालनार्थ किसी वर्तमान विधि के या एतत्पश्चात् राज्य द्वारा बनाई गई किसी विधि के उपबंध।]

***अध्यक्षः** आप इसे पेश कर सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः** धन्यवाद, श्रीमान, एक और संशोधन जो मेरे नाम से है वह संशोधन संख्या 488 है।

***अध्यक्षः** 511 के बारे में क्या?

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं उसे पेश नहीं करना चाहता हूं। आपकी अनुज्ञा से जो संशोधन इस समय मैंने पेश किया है वह 510 और 433 का स्थान ग्रहण करेगा। संशोधन संख्या 488 जो मेरे नाम से है वह इस प्रकार है:—

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'determined' शब्द के पश्चात् 'and given' शब्द जोड़ दिये जायें।"

***अध्यक्षः** यह तो आ चुका है।

***श्री जसपतराय कपूरः** श्रीमान, मुझे खेद है। एक और संशोधन जो मेरे नाम से है वह संख्या 495 है। श्रीमान, यदि वह पहले पेश किये गये संशोधनों के अन्तर्गत नहीं आता है तो मैं उसे पेश करता हूं।

***अध्यक्षः** मुझे पता नहीं, आप उसे औपचारिक रूप में पेश कर सकते हैं।

***श्री जसपतराय कपूरः**

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (3) में 'unless such law having been reserved for the consideration of the President, has received his assent' शब्दों के स्थान में 'has received the assent of the President' शब्द रख दिये जायें।"

इसके बाद एक और संशोधन 508 है। श्रीमान, मैं उसे पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (5) का उपखंड (क) अपमार्जित किया जाये।"

श्रीमान, मुझे यह स्वीकार करना पड़ेगा कि जिस रीति से प्रतिकर के इस प्रश्न पर विचार किया जा रहा है और इस विषय पर अनावश्यक रूप से यह जो लम्बा वाद-विवाद चल रहा है उसके कारण मैं बहुत दुःख अनुभव कर रहा हूं और मेरा विश्वास है कि ऐसा कह कर मैं सभा के अन्य अनेक सदस्यों के विचारों को व्यक्त कर रहा हूं क्योंकि मुझे विश्वास है कि वे भी दुःख अनुभव कर रहे हैं। यह प्रतिकर का विषय हमारे सामने एक नये विषय के रूप में नहीं रखा गया है। देश का ध्यान यह विगत कई वर्षों से आकर्षित किये हुए हैं। देश के भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों द्वारा समाचार पत्रों में तथा मंच पर इस पर वाद-विवाद हुआ है जब हम मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन पर वाद-विवाद कर रहे थे उस समय यहां इस संविधान सभा में भी इस पर वाद-विवाद हो चुका है और हम सब समस्त राजनैतिक पक्ष अपनी-अपनी विचारधारा के अनुसार, इस समय की सरकार, प्रधान मंत्री तथा संविधान सभा इस विषय पर एक निश्चित विनिश्चय पर पहुंच चुके हैं, और हमारे लिये या मसौदा समिति के लिये जो कुछ शेष रह गया था वह यह था कि उन निश्चित रूप से स्वीकार किये गये सिद्धान्तों और वचनों के अनुसार एक अनुच्छेद तैयार करें।

परन्तु दुर्भाग्यवश हम देखते हैं कि जो अनुच्छेद इस समय हमारे समक्ष प्रस्तुत किया गया है, अधिकतर उन सब बातों, को, उस पूरे प्रश्न को, वाद-विवाद तथा अन्तिम विनिश्चय के लिये फिर से रख दिया गया है। मेरे मित्र श्री श्यामानंदन सहाय द्वारा एक औचित्य प्रश्न उठाया गया था, पर श्रीमान, आपने इसे अस्वीकार कर दिया, उसके औचित्य प्रश्न होने के अलावा उनकी इस प्रार्थना में बहुत सार

[श्री जसपतराय कपूर]

था कि इस अनुच्छेद के अधिकांश भाग में ऐसी बातें हैं जो इस संविधान सभा में विनिश्चित की गई बातों तक का विरोध करती हैं।

श्रीमान, हम यह देखें कि वे कौन-कौन सी भिन्न-भिन्न बातें हैं जिन पर देश में तथा इस संविधान सभा में भी वाद-विवाद हो चुका है और जिन पर अन्तिम विनिश्चय हो चुका है। जहां तक कांग्रेस का संबंध है, सरकार का सम्बन्ध है, माननीय प्रधान मंत्री का संबंध है और इस सभा का संबंध है ये तीन बातें निश्चित की जा चुकी हैं। पहली यह है कि जमींदारी प्रथा का उन्मूलन किया जायेगा। दूसरी यह कि जिनसे जमींदारी अधिकार अर्जित किये जायेंगे उन्हें ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर दिया जायेगा और तीसरी यह कि अन्य संपत्ति जिसे हम अर्जित करें उसके लिये उचित तथा ठीक प्रतिकर दिया जायेगा। ये तीन बातें हैं जिनका निश्चय कर लिया गया है और जिनके प्रति कांग्रेस वचनबद्ध है। यही हमने अपने निर्वाचन संबंधी घोषणा पत्र में रखी थीं। यही इस सभा में ता: 6 अप्रैल, सन् 1948 को घोषित किये गये सरकारी संकल्प में भी रखी गई थीं। और फिर यही बातें 6 अप्रैल सन् 1949 को प्रधान मंत्री ने संसद में घोषित की थीं। यही नहीं 6 अप्रैल, 1949 को माननीय प्रधान मंत्री द्वारा दिये गये वक्तव्य में वे पूंजी लगाने वाले विदेशियों को आश्वासन देने के लिये और आगे बढ़ चुके थे और यह कहा था कि उनके किसी औद्योगिक कारखाने के अर्जन करने पर केवल उन्हें ठीक तथा उचित प्रतिकर ही नहीं दिया जायेगा बल्कि उनके धन को उनके देश ले जाने के कार्य में भी उन्हें आवश्यक सुविधायें दी जायेंगी। हमारी, संविधान सभा की, सरकार की और माननीय प्रधान मंत्री की ये प्रतिज्ञायें हैं।

श्रीमान, मेरे विचार में ऐसा आता है और मुझे विश्वास है कि यहां उपस्थित अन्य सदस्यों के विचार में भी यही है कि पहले हमने जो कुछ कहा अथवा वचन दिये हैं उनसे पूर्णतया अथवा अंशतया पीछे हटना न उचित है, न ठीक है और न वांछनीय ही है। श्रीमान, हम यह देखें कि आया यह अनुच्छेद जो कुछ हमने विनिश्चित किया है उसके अनुरूप है या हमारी उन प्रतिज्ञाओं से कोई विलगन है। यदि उन प्रतिज्ञाओं से कोई विलगन है तो निश्चय ही हमें वह स्वीकार नहीं करना चाहिये।

खंड (2) में यद्यपि यह मान लिया गया है कि संपत्ति का प्रतिकर निश्चय किये बिना संपत्ति अर्जित नहीं की जायेगी, परन्तु उसमें ये तीन मुख्य शब्द प्रतिकर के संबंध में नहीं दिये गये हैं कि वह ठीक, न्याययुक्त तथा न्यायोचित होगा जिन शब्दों का प्रयोग हम अपने निर्वाचन संबंधी घोषणापत्रों में, यहां किये गये विनिश्चयों में, प्रधानमंत्री के वक्तव्यों में और औद्योगिक नीति पर सरकारी वक्ताओं में करते आये हैं। श्रीमान, ये शब्द बहुत ही आवश्यक हैं और मैं नहीं समझ पाता हूं कि इन शब्दों का प्रयोग यहां पर क्योंकर न हो। यदि यह समझा जाता है कि ये शब्द व्यर्थ तथा अनावश्यक हैं तो मैं इस बात को ठीक नहीं समझता हूं क्योंकि इन शब्दों को उचित विचार-विमर्श तथा वाद-विवाद और किसी निश्चित प्रयोजन

से निकाला गया है। श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि ऐसा नहीं होना चाहिये। मेरा एक संशोधन जिसको अब एक और संशोधन के कारण रोक दिया गया है जिसको एक और माननीय सदस्य पेश कर चुके हैं उसमें मैंने यह चाहा था कि 'प्रतिकर' शब्द के पहले कम से कम 'न्यायोचित' शब्द रख दिया जाये। 'ठीक' और 'न्याययुक्त' शब्दों को निकाल देने के लिये मैं सहमत हो गया था क्योंकि ऐसा प्रतीत हुआ कि इस बात पर बहुत अधिक उत्तेजना हो रही है और इस बात के कारण कि उन शब्दों का यहां रखना हमारे कुछ मित्रों को कहीं कष्टदायक न हो। इन तीन शब्दों में से मैंने सोचा कि यदि हम केवल 'न्यायोचित' शब्द रखेंगे तो यह उनको मान्य होगा और इससे मसौदे में कुछ न कुछ तो कम से कम सुधार हो ही जायेगा। श्रीमान, मुझे ऐसी कोई बात नहीं दिखाई देती है कि 'प्रतिकर' शब्द के पहले 'न्यायोचित' शब्द क्योंकर न रखा जाये। आखिर इस संकल्प के निर्माताओं और माननीय प्रस्तावक महोदय का क्या आशय है? क्या उनका यह आशय नहीं है कि न्यायोचित प्रतिकर न दिया जाये? यदि उनका आशय यही है तब तो इस शब्द को वहां रखा जाये और यदि यह आशय नहीं है तो हम अपने कर्तव्य, आश्वासनों तथा वचनों से पीछे हट रहे हैं। यह कहा जाता है कि यदि हम यहां 'न्यायोचित' शब्द रख देंगे तो वह न्याय्य हो जायेगा। किसी बात के न्याय्य होने से हम क्यों डरें? माननीय प्रधान मंत्री ने बड़े उत्साहपूर्वक तथा बड़े उच्च स्वर में यह कहा था "अपने वचनों पर शत-प्रतिशत खड़े रहने की हमारी दृढ़ धारणा है"–उन्होंने इसी पद का प्रयोग किया था। मैं इससे न अधिक चाहता हूं न कम। यदि आप किसी वक्तव्य को बड़े उत्साहपूर्वक देते हैं तो यदि वह वास्तव में तथ्य नहीं है तो उससे वह तथ्य नहीं बन जाता। हमारे वचन क्या थे? यही कि जमींदारी का उन्मूलन करेंगे। ठीक है। औद्योगिक संपत्ति के अर्जन करने का अधिकार हम रक्षित रखें। ठीक है। परन्तु तीस वचन के बारे में क्या हुआ, जिसको विदा कर दिया गया है कि हम 'ठीक', 'न्याययुक्त' तथा 'न्यायोचित' प्रतिकर देंगे? अधिक से अधिक जो वचन हम ने दिये थे उनका 66 प्रतिशत पालन किया है। इन तीन में से इस समय केवल दो स्वीकार किये गये हैं। तीसरा हवा में उड़ा दिया गया। श्रीमान, मैं निवेदन करता हूं कि यह कहना सही नहीं है कि हम अपने वचनों का शत प्रतिशत पालन कर रहे हैं।

श्रीमान, मैं यह कह रहा था कि ऐसा क्यों है कि इनको न्याय्य बनाने से हम डरते हैं? मुझे अपने विधान मंडलों में विश्वास है, मुझे अपने संसद में विश्वास है और मुझे विश्वास है कि कभी कोई राज्य का विधान मंडल या संसद कोई ऐसी विधि अधिनियमित नहीं करेगा, जिसके द्वारा न्यायोचित प्रतिकर दिये जाने के उपबंध बनाये बिना किसी संपत्ति को लोक प्रयोजनों के लिये ले लिया जाये। यदि न्यायोचित प्रतिकर देने का आशय वास्तविक है तो हम यह क्यों सोचें कि न्यायालय का निर्णय विधि में जो कुछ हम उपबंध करेंगे उसके विरुद्ध होगा? हमें ऐसा नहीं सोचना चाहिये। 'न्यायोचित' शब्द बहुत लचीला है। आज जो न्यायोचित है वह कल न्यायोचित न रहे। जैसा कि मैं समझता हूं 'न्यायोचित' वह है जो वर्तमान राजनैतिक सिद्धान्तों, समाज द्वारा स्वीकृत वर्तमान आर्थिक सिद्धान्तों, के अनुसार हो और यह निश्चित है कि हमारे न्यायाधीश और न्यायालय जिनके प्रति हमारा अनुभव बहुत ही संतोषजनक है वे हमें असफल बनायेंगे क्या हमने यह नहीं देखा है कि तत्कालीन स्वीकृत राजनैतिक तथा आर्थिक सिद्धान्तों के अनुसार उसी एक निधि का निर्वचन

[श्री जसपतराय कपूर]

समय-समय पर भिन्न-भिन्न न्यायाधीशों द्वारा भिन्न-भिन्न रूप में किया गया है? उदाहरणार्थ राजद्रोह विधि को ही लीजिये। इस विधि का एक खास उपबंध आज भी है वैसा ही जैसा कि वह पहले था। परन्तु सन् 1906 में लोकमान्य तिलक के समय में राजद्रोह विधि का निर्वचन आज के निवर्चन से पूर्णतया भिन्न था। उस समय भी राजद्रोह था वह अब सरकार की आलोचना मात्र है और वह भी एक साधारण आलोचना और उसको केवल सहन ही नहीं किया जाता है और केवल न्यायालय ही नहीं वरन् हम लोग भी उसे प्रोत्साहित करते हैं। मेरा निवेदन यह है कि हमारे न्यायाधीशों ने सदैव समाज की आवश्यकता के अनुसार तत्कालीन स्वीकृत राजनैतिक, आर्थिक और सामाजिक सिद्धान्तों के अनुसार विधियों का निर्वचन किया है। एक और उदाहरण लीजिये, समाज के परिवर्तनशील विचारों तथा आवश्यकताओं के साथ-साथ हिन्दू विधि पर निर्णय तथा उसका निर्वचन बदलता गया। इस विषय के मुझे और अधिक विस्तार में नहीं जाना है। मैं निवेदन करता हूं कि ऐसी कोई बात नहीं है जिसके कारण हम इन उपबन्धों को न्याय्य बनाने में डरें।

इसके पश्चात्, श्रीमान, मैं यह निवेदन करता हूं कि यदि कोई व्यक्ति किसी खास विधेयक, किसी खास अधिनियम को न्यायालय में ले जाता है तो अधिक से अधिक क्या होगा? यदि हम किसी अधिनियम में यह उपबंध करें कि किसी संपत्ति के अर्जन के लिये हम 100/- रुपये देंगे और यदि न्यायालय यह घोषित करती है कि 100/- रुपया न्यायोचित नहीं है और वह यह निर्णय करती है कि 125/- या 150/- रुपया होना चाहिये तो हमारी कोई हानि नहीं होती है क्योंकि इस अनुच्छेद के निर्माताओं ने खंड (5) के उपखंड (ख) का उपबंध करके बड़ी सावधानी की है जिसमें कहा गया है "आगामी अनुवर्त्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त खंड (2) की किसी बात से—

(ख) एतत्पश्चात् राज्य जो कोई विधि किसी कर या अर्थदंड के आरोपण या उद्ग्रहण के प्रयोजन के लिये, अथवा सार्वजनिक स्वास्थ्य की उन्नति के अथवा प्राण या सम्पत्ति के संकट निवारण के लिये बनाये, उसके उपबंधों पर प्रभाव नहीं होगा।"

आपका ध्यान मैं विशेषतया "किसी कर के आरोपण या उद्ग्रहण के लिये" शब्दों की ओर आकर्षित करता हूं। यह एक बहुत बड़ा अधिकार है जिसे आप अपने लिये रक्षित रख रहे हैं। यदि 100/- रुपये के स्थान में न्यायालय यह निर्णय करता है कि आप को 150/- रुपया देना चाहिये, तो यह क्यों न कहा जाये "धन्यवाद हजूर, हम 150/- रुपया देंगे" और फिर वापस आकर 5 (ख) के अधीन एक विधि अधिनियमित कर दीजिये कि "उसमें से 33 फीसदी कर ले लिया जायेगा" और कर के रूप में वह 50/- रुपये ले लीजिये। अतः मैं निवेदन करता हूं कि खंड 5(क) के अधीन इन शक्तियों के हमारे लिये रक्षित होने से हमारे लिये यह नितान्त आवश्यक है कि इस समूची बात को न्याय्य बनाने से हम डरें। यह वही जिसे हम 'गुनाह बेलज्जत' कहते हैं। इन सब बातों का विरोध

क्यों लें? आप इस बात के भागी क्यों बनते हैं कि आप अपनी विधि को न्याय्य बनाने से डरते हैं? हमें उससे लाभ कुछ नहीं होगा और हानि अधिक होगी। अत: मैं निवेदन करता हूं कि "प्रतिकर" शब्द के पूर्व कम से कम "न्यायोचित" शब्द जोड़ दिया जाये और खंड (2) में कुछ आनुषंगिक संशोधन कर दिये जायें जिसकी मैं सूचना दे चुका हूं, यद्यपि ये आनुषंगिक संशोधन करना एक छोटा सा विषय है।

श्रीमान, खंड (4) और (6) जिनको इस अनुच्छेद में रखने का प्रयास किया गया है उनके संबंध में हम क्या देखते हैं? जो मनुष्य इन खंडों को पढ़ता है उसका सर्वप्रथम यह विचार होता है कि ये खंड ऐसे हैं कि जिनको समझना कठिन है। हां, हम लोग जो यह जानते हैं कि इन खंडों के पीछे वास्तव में क्या वे इनके उद्देश्य और कारण को समझ सकते हैं। पर यदि कोई विदेशी इन खंडों को पढ़े तो आश्चर्य में पड़ कर वह अपनी आंखें मलेगा और यह पूछेगा कि इन खंडों में क्या तर्क है, क्या आधार है? वह यहां तक भी कह सकता है कि इन खंडों का आखिर क्या अर्थ है? किस प्रयोजन के लिये इनको रखा गया है। खंड (4) में कहा गया है "इस संविधान के प्रारंभ पर विधान मंडल में लम्बित कोई विधेयक इत्यादि इत्यादि। जिस तिथि को यह संविधान प्रवृत्त होगा उस तिथि को यह विधान मंडल में केवल लम्बित विधेयक को इतना महत्व क्यों दिया जा रहा है? इसके लिये न कोई तर्क है न कोई कारण। ये केवल मनमानी बात है।

और फिर, श्रीमान, खंड (4) राज्यों में परस्पर विभेद उत्पन्न करता है। विधान-मंडल वाले और बिना विधान-मंडल के राज्यों में वह विभेद उत्पन्न करता है। हम यह जानते हैं कि हमारे यहां कई ऐसे राज्य हैं जिनमें विधान-मंडल नहीं हैं। यदि राज्य के विधान-मंडल में विधेयक लम्बित है तो उसे खंड (4) का लाभ होगा। पर यदि दुर्भाग्यवश किसी राज्य में विधान-मंडल नहीं है तो उसे खंड (4) के उपबंधों से कोई लाभ नहीं होगा। राज्यों में परस्पर विभेद करना मुझे तो व्यर्थ सा प्रतीत होता है। केवल यही नहीं, खंड (6) उन राज्यों में भी परस्पर विभेद उत्पन्न करता है जिनमें राज्यपाल है और जिनमें राज्यपाल नहीं है। खंड (6) में कहा गया है "राज्य की कोई विधि, जो इस संविधान के प्रारम्भ से एक वर्ष से अनधिक पहले अधिनियमित हुई हो, ऐसे प्रारम्भ से तीन महीने के अन्दर राज्य के राज्यपाल द्वारा राष्ट्रपति के समक्ष उसके प्रमाणन के लिये रखी जा सकेगी" इत्यादि इत्यादि और इसके पश्चात् यदि राष्ट्रपति उस अधिनियम को प्रमाणित कर देता है तो वह एक बहुत अच्छी विधि बन जाती है और खंड (2) के सारे उपबंध रद्द किये जा सकते हैं। परन्तु दुर्भाग्यवश या सौभाग्यवश यह मैं नहीं जानता हूं—किसी राज्य में शासक है, राज्यपाल नहीं तो चाहे उसने उससे पूर्व विधि अधिनियमित कर ली हो या इन उपबंधों से प्रलोभित होकर इस समय से ता: 26 जनवरी, 1950 तक विधि अधिनियमित कर ले, जिस तारीख को यह संविधान प्रवृत्त होगा तो भी वह राज्य खंड (6) के उपबंधों से लाभ नहीं उठा सकता है। यह विभेद क्यों? क्या हमारा विचार यह है कि उन राज्यों में क्रान्ति के लिये प्रोत्साहन किया जाये? क्या हमारा विचार यह है कि वहां के नागरिकों से आन्दोलन करने को कहें कि वे एक राज्यपाल की मांग करें जिससे कि खंड (6) के उपबंधों का लाभ उठा सकें? कई माननीय सदस्यों को जो ऐसे राज्यों के प्रतिनिधि हैं इस

[श्री जसपतराय कपूर]

बात का बड़ा दु:ख है और यह ठीक है क्योंकि वे यह कहते हैं "हम भी अपने राज्य में जमींदारी उन्मूलन करना चाहते हैं; हम भी अपने राज्य में जागीरदारी उन्मूलन करना चाहते हैं, पर हममें से कुछ के यहां विधान-मंडल नहीं है और न हमारे यहां राज्यपाल, हैं।" जब कि एक राज्य जिस में विधान-मंडल तथा राज्यपाल है वह अब से लेकर 26 जनवरी, 1950 तक एक विधि अधिनियमित कर और प्रतिकर के लिये कोई उपबंध बनाये बिना ही जमींदारी और औद्योगिक संपत्ति का विनियोग कर सकता है—क्योंकि खंड (4) और (6) का अर्थ यही है। आपका विचार दूसरी बात है—पर जिस राज्य में न तो विधान-मंडल है और न राज्यपाल उसे ऐसा करने का अधिकार नहीं होता है। यह द्वेष उत्पन्न करने वाला विभेद क्यों? मैं यह नहीं चाहता हूं कि उनको भी वही अधिकार हो; मैं तो केवल यह निवेदन कर रहा हूं कि अपने वर्तमान रूप में खंड (4) और (6) की प्रविष्टि कितनी मूर्खतापूर्ण है।

जैसा कि मैं कह चुका हूं खंड (4) में एक और भी दोष है: निर्माताओं का उद्देश्य खंड (4) से संयुक्त प्रान्तीय जमींदारी विधेयक का परित्राण है और खंड (6) से मद्रास और बिहार के अधिनियमों का परित्राण है। यदि आप इसी बात को स्पष्ट रूप से वहां रख देते तो वह केवल उसी सीमा तक को दोष होता। पर आप उस बात को तो स्पष्ट कहते नहीं वरन् इस उपबंध को सामान्य रूप में रखते हैं जिसका यह आशय है कि कोई भी राज्य यहां तक कि संयुक्त प्रान्त, मद्रास और बिहार भी कोई ऐसी विधि अधिनियमित कर सकते हैं जिसके द्वारा वे जमींदारी अथवा अन्य किसी प्रकार की सम्पत्ति के विनियोग करने का अधिकार प्रतिकर के रूप में एक कौड़ी तक देने का उपबंध किये बिना अपने ऊपर ले सकते हैं। आखिर इन खंडों का यही तो अर्थ है। ये दूसरी बात है कि आप न्यायवश ऐसा न करें पर इस विषय पर विधि निश्चित तथा स्पष्ट होनी चाहिये।

इस अनुच्छेद को इस रूप में रखकर और खंड (4) और (6) को इस रूप में रखकर एक बात जो हम प्रत्येक व्यक्ति के मन में पैदा करेंगे वह यह है कि इस समय से लेकर इस संविधान के प्रवृत्त होने की तिथि तक का समय भारत के इतिहास में एक घोर अंधकार का काल होगा। क्या गणराज्य से पूर्ण के काल को इतना अधंकारमय इस कारण बनाया जा रहा है कि गणराज्य बनाने के बाद का काल अधिक प्रकाशमय प्रतीत हो? वह समय तो स्वयं ही प्रकाशमय होगा। गणराज्य के पूर्व काल को, एक पांच माह के काल को, इतना अंधकारमय, इतना धुंधला बनाने से कोई लाभ नहीं। अत: मैं निवेदन करता हूं कि मूलाधिकारों में विशेषकर इन खंड (4) और (6) को रखना बड़ा हास्यास्पद प्रतीत होता है। ये खंड कोई भी मूलाधिकार प्रदान नहीं करते हैं और सच पूछो तो मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन को स्वीकार करते समय जो मूलाधिकार हम स्वीकार कर चुके हैं ये उनका भी निराकरण करते हैं। श्रीमान, आपकी अनुज्ञा से मूलाधिकार समिति के प्रतिवेदन के साथ जो संकल्प स्वीकार किया गया था उसे मैं पढ़कर सुनाना चाहूंगा।

***अध्यक्षः** मैं माननीय सदस्य से भाषण समाप्त करने के लिये कहूंगा।

***श्री जसपतराय कपूरः** मैं समाप्त कर रहा हूं, श्रीमान्, दो मिनट से अधिक समय मैं नहीं लूंगा।

मैं उसे पढ़ूंगा भी नहीं, माननीय सदस्य उसे भली प्रकार जानते हैं। मैं तुरन्त ही अपने अगले संशोधन को लूंगा जिसमें खंड (5) के उपखंड (क) के अपमार्जन का प्रयास है। खंड (5) के उपखंड (क) में यह कहा गया है "आगामी अनुवर्ती खंड में उपबन्धित रीति के अतिरिक्त खंड (2) की किसी बात से (क) का किसी वर्तमान विधि के उपबंधों पर प्रभाव नहीं होगा।" क्या मैं यह पूछ सकता हूं कि इस उपखंड की क्या आवश्यकता है? वे वर्तमान विधियां कौन-कौन सी हैं जो विचाराधीन हैं? मैं तो केवल एक ही विधि को जानता हूं और वह विधि भू-संपत्ति अर्जन के संबंध में भू-अर्जन अधिनियम है। जहां तक इस अधिनियम का संबंध है वह अवश्य ही खंड (2) के उपबंधों के अनुरूप है क्योंकि उस अधिनियम में यह स्पष्ट निर्धारित है कि किस आधार पर संपत्ति अर्जित की जायेगी। उस अधिनियम के परित्राण के लिये इस खंड की आवश्यकता नहीं है। अन्य किन अधनियमों की ओर संकेत है यह मैं नहीं जानता। मैं यह अवश्य चाहूंगा कि इस बात को स्पष्ट कर दिया जाये कि देश में आज वे कौन-कौन सी विधियां प्रवृत्त हैं जिनके परित्राण करने का इस खंड द्वारा विचार किया गया है। क्या अन्य कोई ऐसी विधि है जिसके उपबंध खंड (2) के उपबंधों के अनुरूप नहीं हैं? मैं तो किसी ऐसी विधि से परिचित नहीं हूं, यद्यपि विधि संबंधी विषयों का विशेषज्ञ न होने के कारण मैं इस विषय पर पक्की राय देने का साहस नहीं कर सकता हूं, अपितु माननीय प्रस्तावक महोदय से इस विषय पर प्रकाश डलवाना चाहता हूं कि खास विधियां कौन-कौन सी हैं जो उनके विचार में हैं और जिनका वे परित्राण चाहते हैं। यदि कोई एक ऐसी विधि है जिसके उपबंध खंड (2) के उपबंधों के अनुरूप नहीं हैं तो उस अधिनियम का परित्राण क्यों किया जाये। इस अनुच्छेद 24 का उद्देश्य मूलाधिकारों के लिये उपबंध करना है, उनका परित्राण करना है, न कि किसी ऐसी विधि का जो मूलाधिकारों की जड़ काटती है।

अतः मैं निवेदन करता हूं कि यह खंड निकाल दिये जायें। अन्यथा इस अन्तर्वर्ती काल में बिना उचित प्रतिकर दिये राज्यों को संपत्ति विनियोग करने के लिये विधि बनाने में शीघ्रता करने के लिये प्रोत्साहन मिलेगा क्योंकि ये सब विधियां उस तिथि को वर्तमान विधियां। समझी जायेंगी जिस तिथि को यह संविधान प्रवृत्त होगा और ये विधियां न्यायालय की जांच के परे हो जायेंगी।

अन्त में मैं विस्थापितों की संपत्ति संबंधी अपने संशोधन पर आता हूं जो वास्तव में सब संशोधनों से अधिक महत्वपूर्ण है। यद्यपि यह सब संशोधनों से अधिक महत्वपूर्ण है पर मैं उस पर विस्तारपूर्वक नहीं बोलूंगा क्योंकि यह विषय बड़ा ही कोमल है और दूसरी बात यह है कि मुझे इस बात की प्रसन्नता है कि माननीय प्रस्तावक महोदय द्वारा यह स्वीकार किया जा रहा है। इसके सम्बन्ध में मैं केवल एक ही बात कहूंगा। हमारे शरणार्थी भाई, जो पश्चिमी पंजाब से आये हैं, लगभग

[श्री जसपतराय कपूर]

1500 करोड़ की संपत्ति छोड़ आये हैं और इस देश में विस्थापितों की संपत्ति का मूल्य लगभग 500 करोड़ है। इस विषय पर इस देश तथा पाकिस्तान में बातचीत हो रही है और इस बातचीत को माननीय श्री एन. गोपालस्वामी आयंगर जैसे कुशल व्यक्ति कर रहे हैं। उनका सरल स्वभाव होने पर भी, उनकी युक्तियुक्त प्रकृति होने पर भी, उनमें इतनी महानता होने पर भी अब तक वे इस विषय पर कोई समझौता नहीं कर सके हैं। अभी तक तो वे पाकिस्तान को इस विषय पर समझौता करने के लिये समझा बुझा रहे हैं। संभवतः समझौता हो या न हो। दोनों दशाओं में यह आवश्यक है कि बाद में आवश्यकता पड़ने पर हमें कोई ऐसी विधि बनानी पड़े और इस कारण इस विषय पर समस्त वर्तमान विधियां तथा अध्यादेश खंड (2) के उपबंधों से परे होने चाहियें। क्योंकि यदि ऐसा नहीं होगा तो दुर्भाग्यवश बाद में किसी प्रकार के समझौते के न होने के कारण हमें विस्थापितों की संपत्ति का विनियोग करना पड़े तो उस समय हम शरणार्थियों की 1500 करोड़ तक की संपत्ति से ही हाथ नहीं धो बैठेंगे वरन् खंड (2) के अधीन विस्थापितों को भी प्रतिकर देने के लिये हमें विवश होना पड़ेगा। इस कारण मैं निवेदन करता हूं कि यह आवश्यक है और चूंकि यह स्वीकार किया जा रहा है इस कारण इस विषय पर मुझे और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। इन बातों के और अपने संशोधनों के सहित जो अनुच्छेद पेश किया गया है उसका मैं समर्थन करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 474। माननीय सदस्यों को मैं यह याद दिलाऊंगा कि आज हमें यह अनुच्छेद समाप्त करना है चाहे कितना समय लग जाये और मैं उनसे निवेदन करूंगा कि वे अपनी बातों को यथासम्भव संक्षेप में कहें।

***श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहीम** (मद्रास : मुस्लिम): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (1) के अन्त में यह जोड़ दिया जाये:–

'and accept on payment of fair and equitable compensation based on the market value of the property.' "

मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'provides for compensation' शब्दों के स्थान में 'provides for fair and equitable compensation based on market value' शब्द रखे जायें।"

अनुच्छेद 24 एक मुख्य मूलाधिकार निर्धारित करता है और मैं समझता हूं कि यह कहते हुए मैं ईअत्युक्ति नहीं कह रहा हूं कि देश की समस्त अर्थव्यवस्था इस मूलाधिकार के समुचित प्रवर्त्तन पर निर्भर करती है। खंड (1) में यह उपबंध है कि विधि के प्राधिकार के बिना कोई व्यक्ति अपनी संपत्ति से वंचित नहीं किया जायेगा। यह मूलाधिकार है जिसके सृजन का प्रयास इस अनुच्छेद द्वारा किया गया है। पर इस खंड द्वारा जिस मूलाधिकार को देने का प्रयास किया गया है उससे नागरिकों को बाद के खंड (2) द्वारा वास्तव में वंचित कर दिया गया है क्योंकि उसमें विधान मंडल को खंड (1) द्वारा किये गये उनके अधिकार के पूर्ण मूल्य को विनिश्चित करने की शक्ति दी गई है। किसी संपत्ति का मूल्य खुले बाजार में उसकी जो कीमत मिले उस पर निर्भर करता है, पर खंड (2) में कहा गया है कि विधान मंडल द्वारा अपनी इच्छा के अनुसार मूल्य नियत किया जा सकता है। तो फिर खुले बाज़ार में उस संपत्ति का क्या मूलय होगा? खंड (2) के कारण संपत्ति के मूल्य में अविश्वास निश्चित है और भूमि में अप्रतिभूति की भावना निश्चित है। देश की अर्थव्यवस्था में संपत्ति के मूल्य के इस अविश्वास और अप्रतिभूति की भावना का क्या प्रभाव पड़ेगा? यह प्रश्न उत्पन्न होता है। मैं यह कहूंगा कि इसके कारण खंड (2) पूर्णतया उन सब बातों को छीन लेता है जो खंड (1) द्वारा नागरिकों को दी गई हैं।

इस समय भी वर्तमान विधि के अधीन हम यह देखते हैं कि संपत्ति पर प्रतिकर जिस भूमि को अर्जित किया जाता है उसके निकटवर्ती उसी प्रकार की भूमि के बाजार मूल्य के अनुसार दिया जाता है। जो विधि इस देश में लागू है उसका यह एक प्रसिद्ध सिद्धान्त है, पर इस खंड का इस सिद्धान्त पर क्या प्रभाव पड़ेगा? यह सिद्धान्त पूर्णतया रद्द हो जायेगा। विधान-मंडल कोई भी प्रतिकर राशि नियत कर सकता है प्रतिकर की मात्रा विधान-मंडल पर निर्भर करेगी और प्रतिकर देने का सिद्धान्त भी विधान मंडल पर निर्भर करेगा। ऐसी दशा होने पर मूल्य के बारे में कोई विश्वास नहीं हो सकता है। लोगों के लिये भूमि या वाणिज्यिक उपक्रमों या उद्योगों में रुपया लगाने के लिये कोई प्रेरणा न मिलेगी। यह खंड बहुत ही व्यापक है और इसमें सब प्रकार की संपत्ति शामिल कर ली गई हैं जिसका फल यह होगा कि वाणिज्यिक उपक्रमों या भूमियों में रुपया लगाने की प्रेरणा लोगों में नहीं होगी। खंड (2) के कारण यह समस्या उत्पन्न होती है।

मैं सभा से निवेदन करूंगा कि इस विषय पर वे निष्पक्ष होकर तथा बिना किसी प्रेम तथा ईर्ष्या के विचार करें। यह विषय देश की अर्थव्यवस्था पर प्रभाव डालने वाला है। क्या यह खंड लोगों के दिलों में वह विश्वास उत्पन्न करेगा जिसकी किसी वाणिज्यिक उपक्रम तथा किसी कृषि संबंधी उपक्रम की सफलता के लिये नितांत आवश्यकता है? निस्सन्देह रूप में नहीं करेगा, क्योंकि संपूर्ण चित्र अस्पष्ट है और कोई व्यक्ति यह नहीं जानता है कि किस समय विधान-मंडल किस प्रकार की संपत्ति का क्या मूल्य रखेगा। केवल इसी दृष्टिकोण से मैं सभा से निवेदन करता हूं कि वह इस खंड पर ध्यान दे और मेरा संशोधन केवल इसी दृष्टिकोण पर आश्रित है। मैं नहीं समझता हूं कि संसार के किसी भाग में विधान-मंडल की इच्छा के अनुसार किसी भी प्रकार की संपत्ति के लिये प्रतिकर दिया जाता हो। शायद इस अनुच्छेद के निर्माताओं पर जमींदारी प्रथा के उन्मूलन करने के वर्तमान प्रश्न का भूत सवार था। यदि आप यह चाहते हैं कि बिना किसी प्रतिकर

[श्री के.टी.एम. अहमद इब्राहीम]

के ज़मींदारी प्रथा का उन्मूलन हो तो आप इस प्रयोजन के लिये कोई और अनुच्छेद बना सकते हैं। इस विषय को संपत्ति के सामान्य विचार तथा संपत्ति के सामान्य मूलाधिकार से न मिलाइये।

मेरे मित्र माननीय श्री कला वैंकट राव ने जमींदारों के बारे में कुछ कहा था। वे इस धारणा को लेकर चले कि जमींदारों का समूचा वर्ग राजस्व देने वाले किसानों का है; पर मैं उनको यह स्मरण कराऊंगा कि वह प्रस्थापना ऐसी नहीं है जिसे बिना किसी शर्त के मान लिया जाये। ऐसे जमीदार हैं जो शासकों तथा राजकुमारों के वंशज हैं और ऐसे जमींदार हैं जिन्होंने उस भूमि की पूरी कीमत दी है जो उन्होंने आरम्भ में ईस्ट इंडिया कंपनी से खरीदी थी और ऐसे भी ज़मींदार हैं जिन्होंने उन लोगों के वंशजों को पूरी कीमत दी है जिनको आरम्भ में लगान इकट्ठा करने वाला नियुक्त किया गया था। उत्तराधिकारी सरकारों की जानकारी तथा पूर्ण सम्मति से उन्होंने उनको पूरी कीमत दी है। उत्तराधिकारी सरकारों ने राजस्व देने वाले किसानों तक को अपनी संपत्ति को अपनी संपत्ति समझने दिया है और उसे उन्हें निकालने, पट्टे पर देने तथा रहन रखने का अधिकार दिया है। अतः क्या वे इन संपत्तियों के वास्तविक स्वामी नहीं हैं? इन जमींदारों के लिये प्रतिकर का हिसाब लगाते समय आपको इस बात पर भी विचार करना पड़ेगा।

श्रीमान, मैं समझता हूं कि अपने संशोधन के महत्व पर और अधिक कहने की आवश्यकता नहीं है। उद्देश्य केवल यह है कि लोगों में विश्वास उत्पन्न करा दिया जाये और वे यह समझने लगें कि देश के प्रशासन की दृष्टि में संपत्ति का पूरा मूल्य होगा और संपत्ति का मूल्य विधान-मंडलों की मनमानी इच्छा के अनुसार नहीं होगा। और इस प्रकार उद्योग की उन्नति, कृषि की उन्नति और वाणिज्य की उन्नति हो सके। श्रीमान, इन शब्दों के साथ मैं सभा के समक्ष अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***अध्यक्षः** संशोधन संख्या 475—श्री फूलसिंह।

***श्री फूल सिंह** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): अध्यक्ष महोदय, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) के स्थान में यह रखा जाये:

'(2) Private property and private enterprises are guaranteed to the extent they are consistent with the general interests of the toiling masses.

(2a) In the case of acquisition or taking possession of any property movable or immovable including any interest in or in any company owning any commercial or industrial undertaking such property shall be acquired or taken possession of only in accordance with

law which shall determine the cases in which compensation is to be allowed as also the amount of compensation to be allowed and the manner in which the compensation is to be given.

(3) No such law shall be called in question in a court of law on the points stated in clause (2a) above.'"

[(2) निजी संपत्ति और निजी उद्यमों की उस सीमा तक प्रत्याभूति की जाती है जिस सीमा तक वे श्रमिक वर्गों के सामान्य हितों से संगत हैं।

(2क) किसी स्थावर या जंगम संपत्ति के, जिसके अन्तर्गत किसी वाणिज्यिक या औद्योगिक उपक्रम में या उसकी स्वामिनी किसी कंपनी में कोई अंश भी है, अर्जन करने में उस संपत्ति को ऐसी विधि के अनुसार कब्जाकृत या अर्जित किया जायेगा जो उन मामलों का विनिश्चय करेगी, जिन में प्रतिकर दिया जाना है तथा प्रतिकर की राशि और प्रतिकर देने की रीति पर भी विनिश्चय करेगी।

(3) उपरोक्त खंड (2क) में कथित विषयों के संबंध में किसी ऐसी विधि पर किसी न्यायालय में आपत्ति नहीं की जायेगी।]

श्रीमान, जो बातें इस संबंध में विचारार्थ प्रस्तुत होती हैं वे केवल ये हैं कि अर्जन करने के विषय में क्या कोई प्रतिकर दिया जाये या नहीं और यदि दिया जाये तो प्रतिकर की क्या राशि हो और उसके देने की क्या रीति हो। दूसरी बात यह है कि क्या यह अधिकार न्याय्य होना चाहिये। यह हमें निजी संपत्ति के इस प्रश्न की ओर ले जाता है कि क्या वह निरपेक्ष अधिकार हो अथवा एक ऐसा अधिकार हो जो श्रमिक वर्गों के हितों से संगत हो। यह धारणा कि बिना प्रतिकर के अर्जन न होना चाहिये, भविष्य को प्रतिबन्धित करती है या जब तक यह विधि है तब तक भविष्य को बन्धनयुक्त कर देती है। ऐसी उदाहरण सरलता से सोचे जा सकते हैं जिनमें बिना प्रतिकर के संपत्ति अर्जन केवल ठीक ही नहीं वरन् आवश्यक होगा। इन परिस्थितियों के अधीन इस बात को भावी संसद के विनिश्चय पर छोड़ देना सर्वोत्तम होगा कि समय-समय पर संसद के समक्ष जो भिन्न-भिन्न मामले आये उनके लिये प्रतिकर दिया जाये या नहीं।

इसी प्रकार प्रतिकर की राशि संपत्ति के मूल्य के निर्देशानुसार ही विनिश्चित नहीं की जा सकती है। ऐसी वक्ता भी यहां आये हैं जिन्होंने पूर्ण प्रतिकर तक का समर्थन दिया है। मुझे आश्चर्य होता है कि "बाजार मूल्य" शब्द रखने में उन्हें क्यों हिचकिचाहट हुई। पूर्ण प्रतिकर क्या है? "बाजार मूल्य" समुचित शब्द होता। पर मैं समझता हूं यदि "पूर्ण प्रतिकर" माना जाता है तो यह कहना अधिक अच्छा होगा कि कोई प्रतिकर नहीं होना चाहिये क्योंकि जो कुछ थोड़े से विधान भिन्न-भिन्न

[श्री फूल सिंह]

राज्यों के समक्ष हैं उनसे ही यह सिद्ध हो जाता है कि यदि पूर्ण प्रतिकर दिया जाता है तो अर्जन हो ही न सकेगा।

प्रतिकर की राशि नियत करते समय केवल संपत्ति के मूल्य पर ही नहीं वरन् अन्य ऐसी कई बातें हैं जिन पर विचार करना होगा। प्रतिकर देने की राज्य की सामर्थ्य, लाभ, जो संपत्ति का स्वामी उठा चुका है, और प्रयोजन जिसके लिये संपत्ति अर्जित की जा रही है ये उन बातों में से चन्द बातें हैं जिन पर इस बात का विनिश्चय करते समय विचार करना पड़ेगा कि प्रतिकर की क्या राशि होनी चाहिये। इसी प्रकार से यह प्रश्न भी कि प्रतिकर नकद दिया जाये या वह अर्जन के समय या बाद की किसी तिथि को दिया जाये, सदैव के लिये विनिश्चित नहीं की जा सकती है।

इन सब बातों को इस समय विनिश्चित करना होगा जब वह विशेष मामला पैदा हो और प्रत्येक मामले की परिस्थितियों के अनुसार उस पर विनिश्चित करना होगा। श्रीमान, इन सब विषयों पर सदैव के लिये विनिश्चित करना राष्ट्रीय समबुद्धि में विश्वास का खोना है। मैं समझता हूं कि जो लोग बाद में आयेंगे और जो इन विषयों पर विनिश्चित करेंगे और विधान बनायेंगे, वे इन सब संगत बातों पर विचार करेंगे और मैं समझता हूं कि उनके निर्णय में बाधा न डालना अधिक अच्छा होगा। इस कारण मैं न तो यह विचार रखता हूं कि प्रतिकर सदैव दिया जाये, न इस विचार का समर्थन करता हूं कि प्रतिकर बिल्कुल ही न हो। मैं समझता हूं कि सर्वोत्तम तथा समुचित मार्ग यह होगा कि प्रत्येक मामले के पैदा होने पर उसे संसद के विनिश्चय पर छोड़ दिया जाये।

इसके बाद इस अधिकार की न्याय्यता के बारे का विषय है। माननीय प्रधान मंत्री द्वारा आज प्रातः जो संशोधन पेश किया गया था उसमें यह कहा गया है कि केवल दो शर्तों के अधीन पारित की गई विधि पर आपत्ति नहीं की जायेगी और वे शर्त ये हैं या तो जब संविधान प्रवृत्त हो, उस समय विधान लम्बित हो या उस संविधान के प्रवृत्त हो जाने की तिथि से एक वर्ष के भीतर विधान पारित हो जाये। जब इस खंड की तथ्यों से तुलना की जाती है तो स्थिति यह है कि केवल तीन प्रान्तों में संयुक्त प्रान्त, बिहार और मद्रास में न्यायालयों को विधान की वैधता की अथवा अन्यथा उसकी जांच न करने दी जायेगी। पर इसमें उन सब अनेक राज्यों के संबंध में विचार नहीं किया गया है जो हमारे संघ में विलीन हो गये हैं और जहां विधान मंडल नहीं हैं और इस कारण वहां नये संविधान के प्रवर्त्तन में आने के पूर्व कोई विधान पुरःस्थापित नहीं किया जा सकता है। यह कहना असंगत नहीं होगा कि इस प्रकार के उपबंध की उन्हीं राज्यों में सबसे अधिक आवश्यकता है। अतः मैं सुझाव रखता हूं कि ऐसे सब विधानों की रक्षा करना अधिक अच्छा होगा चाहे इस संविधान के प्रवर्त्तन में आने के समय वे लम्बित हों या चाहे किसी बाद की तिथि में उनका पुरःस्थापन किया जाये, इन सब विधानों की न्यायालय के हस्तक्षेप से रक्षा होनी चाहिये।

अपने पूर्व तर्क को दुहरा कर मैं समय खोना नहीं चाहता हूं। मैं समझता हूं कि जब राष्ट्र के प्रतिनिधि बैठेंगे तो वे एक ऐसे विधान पारित करने की सावधानी

रखेंगे जो ठीक तथा न्याययुक्त होगा और यदि समस्त राष्ट्र के प्रतिनिधि गलती करते हैं तो मुझे इस बात में सन्देह है कि कोई न्यायालय उस गलती को सुधार सके। किसी न्यायालय को इस प्रश्न पर विचार करने देना ऐसी विधियों के पुर:स्थापन करने के उद्देश्य ही को नष्ट करना है।

इन शब्दों में सभा के स्वीकार्थ मैं अपना संशोधन प्रस्तुत करता हूं।

***श्री गुप्तनाथ सिंह** (बिहार : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में—

(1) 'no property' शब्द के स्थान में 'all property' शब्द रखे जायें।

(2) 'unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired and either fixes the amount of compensation, or specifies the principles which the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'with or without compensation as determined by law' शब्द रखे जायें।"

यदि आप निजी संपत्ति के इतिहास की खोज करेंगे तो आपको यह देख कर दु:ख होगा कि वह एक धोखे, महापातक, विदोहन, संपत्ति हरण, अमानवता, अन्याय, दगा, कष्ट, क्रूरता तथा आंसुओं से भरी कहानी है। अत: श्रीमान, निजी संपत्ति का संक्षेप में वर्णन किया जा सकता है। एक फ्रांसीसी लेखक के शब्दों में, एक वाक्य में ही "सब संपत्ति चोरी है।" वास्तव में यह आश्चर्यजनक सा प्रतीत होता है, पर तथ्य यही है कि संपत्ति चोरी है। ईसा मसीह, महर्षि व्यास तथा महात्मा गांधी ने इसी बात की घोषणा तथा पुष्टि की। श्रीमान, यदि आप महाभारत के शांति-पर्व के अध्याय 15 के श्लोक को देखें तो आपको विदित होगा कि ऋषिवर ने संपत्ति का सुन्दर तथा स्पष्ट वर्णन किया है। वे कहते हैं:

ना छित्वा परमर्माणि, ना कृत्वा कर्म दृष्करम्।
ना हत्वा मत्स्य वातीयं प्राप्नोति महती श्रियम्।।

महाभारत, शांतिपर्व, अध्याय 15, श्लोक 2.

अतुल धन, अपार पूंजी तब तक संग्रह नहीं हो सकती है जब तक कि आप दूसरों का दिल न दुखायें, महापातकी कर्म न करें और लोगों को उसी प्रकार न फंसा कर उनकी हत्या न करें, जैसे कि मछुआ मछलियों को जाल में फंसा कर काट-काट कर मारता है। जब मैंने प्रथम बार इस श्लोक को तथा उस फ्रांसीसी लेखक के कथन को देखा तो मैं उस पर विश्वास न कर सका, इस विचार से

[श्री गुप्तनाथ सिंह]

सहमत न हो सका, पर धीरे-धीरे समाज में क्रियान्वित प्रवृत्तियों तथा शक्तियों को देखना आरम्भ किया तो मैं इस परिणाम पर पहुंचा कि ये विचार बिल्कुल सही हैं। लोग अपनी संपत्ति के लिये प्रतिकर की मांग करते हैं। यदि आप मुझे वैदिक शब्दावली का प्रयोग करने देंगे तो अपने पूंजीवादी तथा जमींदार मित्रों से पूछूंगा:-

"कस्यस्विद्धनम्।"

यदि किसी की संपत्ति है? हमारे पूंजीवादी मित्र जमींदार भाई लाल-लाल आंखें निकालें, घूंसा ताने और उन्मत हुए आगे बढ़कर यह कहेंगे "ऐ छोकरे, क्या तू यह नहीं जानता कि सारा संसार हमारी उंगली के इशारे पर नाचता है।"

"भ्रामयन्सर्वभूतानि यन्त्रारूढ़ानि मायया"

इसी कारण वे प्रतिकर की मांग करते हैं। पर मैं आपसे यह कहता हूं कि जिसको वे निजी संपत्ति कहते हैं वह संपत्ति राष्ट्र की है। वैदिक भाषा में यह कहा जा सकता है:

"ईशावास्यमिदं सर्वम्।"

यह सब संपत्ति ईश की है और ईश का प्रतिनिधि राष्ट्र है, और राष्ट्र का प्रतिनिधि समाज है और समाज का प्रतिनिधि किसान तथा श्रमिक है जो लाखों करोड़ों की संख्या में है। अत: सारी संपत्ति समाज की है, न कि किसी विशेष व्यक्ति की।

अत: ये सब बड़े-बड़े भवन, कोठियां और सब कारखाने राष्ट्र के तथा समाज के हैं, न कि किसी विशेष व्यक्ति के। लोग कहते हैं कि उन्होंने कुछ कारखाने खरीदे हैं, कुछ भवन बनाये हैं और कुछ भूमि खरीदी है। पर मैं उनसे पूछता हूं कि उन्हें रुपया कहां से मिला, उन्होंने रुपया किस प्रकार कमाया और किस ने भवनों तथा कारखानों का निर्माण किया। उनको लाखों करोड़ों व्यक्तियों ने बनाया, भूमि को किसानों और मजदूरों ने जोता, न कि इन कारखानों के स्वामियों ने तथा जमींदारों ने। अत: अधिकार के रूप में ये लोग अपनी संपत्ति के लिये प्रतिकर पाने योग्य नहीं हैं और न वे प्रतिकर की मांग कर सकते हैं। औचित्य के आधार पर तो उनकी कोई मांग नहीं टिकती है, और यदि आप संपत्ति के स्वामियों, जमींदारों और पूंजीवादियों की आय की जांच करें तो उन्होंने जितना धन लगाया है उसका कई गुना धन वे ले चुके हैं, उसका उपभोग कर चुके हैं। वे लाखों रुपया प्राप्त कर चुके हैं, वे लाखों रुपया अपने आनन्द के लिये बहा चुके हैं। करोड़ों रुपये के जेवर वे खरीद चुके हैं। उन्होंने आय के कई साधन पैदा कर लिये हैं।

मनु के अनुसार भूमि किसान की है-

"स्थाणुछेदस्य केदारम।"

भूमि उस व्यक्ति की है जो उसे जोतता बोता है, न कि किसी बड़े जमींदार मित्र की। अतः हमारे जमींदार मित्रों द्वारा प्रतिकर की मांग सही नहीं है। मैं उनसे केवल एक प्रश्न पूछता हूं। क्या मुगल बादशाहों के वंशजों को लाल किले तथा अन्य वस्तुओं के लिये प्रतिकर दिया जायेगा? कुछ समय पूर्व संयुक्त प्रान्त के किसी समाचार पत्र में मैंने एक समाचार देखा था कि मुगल बादशाहों के वंशजों ने पंडित जवाहरलाल नेहरू से प्रार्थना की थी कि उनके पूर्वजों की संपत्ति का उन्हें प्रतिकर दिया जाये। क्या यह अनोखी बात नहीं है? क्या अंग्रेजों ने मुगल बादशाहों के वंशजों के लिये लाल किले तथा अन्य बड़ी-बड़ी इमारतों और भवनों के लिये प्रतिकर दिया है। अंग्रेजों द्वारा कई इमारतें बनवाई गई थीं, यद्यपि धन हमारा ही था पर जब उन्होंने छोड़ा तो क्या हमने उन्हें कुछ दिया है? वे लोग अपनी संपत्ति के लिये प्रतिकर की मांग नहीं कर सकते हैं। उनको कुछ भी प्रतिकर नहीं दिया जाना चाहिये। अधिकार के रूप में वे इसकी मांग नहीं कर सकते हैं, पर यह हमारी उदारता है कि हम उन्हें कुछ दे रहे हैं। बिहार में हमने तीन गुने से 20 गुने तक प्रतिकर दिया है, मद्रास में भी सरकार ने प्रतिकर दिया है और संयुक्त प्रान्त में भी सरकार कुछ दे रही है, पर अधिकार के रूप में जमींदार किसी प्रतिकर की मांग नहीं कर सकते हैं।

एक बात है जो मुझे अच्छी नहीं लगी है। पूंजीवाद और जमींदारों के मिटाने में कुछ विभेद कर दिया गया है, कारखाने तथा उत्पादन के अन्य साधनों के राष्ट्रीयकरण और जमींदारी के उन्मूलन में विभेद कर दिया है। भूमि और कारखाने दोनों ही एक श्रेणी के हैं और दोनों का राष्ट्रीयकरण तथा समाजीकरण होना चाहिये। अनुकूल अवसर होने पर इन दोनों को मिटाने का उपबन्ध संविधान में होना चाहिये।

पंडित जी ने एक संशोधन पेश किया है और भाषण दिया है। यदि आप पंडित नेहरू का भाषण किसी व्यक्ति को दें और यह न कहें कि यह किसका भाषण है और उस संशोधन को भी दें जो उन्होंने पेश किया है तो वह व्यक्ति यही कहेगा कि भाषण तो किसी क्रान्तिकारी व्यक्ति ने दिया है और जिसने, संशोधन पेश किया है वह क्रान्तिकारी नहीं है। पंडित नेहरू के तो निस्सन्देह क्रान्तिकारी विचार हैं, पर अपने वर्तमान रूप में यह अनुच्छेद न जाने किन शक्तियों द्वारा नियंत्रित मस्तिष्कों द्वारा बनाया गया सा प्रतीत होता है।

औचित्य के आधार पर लोगों को प्रतिकर नहीं मिलना चाहिये पर विधि में कोई ऐसा उपबन्ध बनाना चाहिये। कि उन संपत्तियों के लिये जिनके लिये प्रतिकर दिया जाये, जो प्रतिकर पाने के योग्य हैं उनको प्रतिकर दिया जाये। देश में तथा संसार में जो विचारधारा प्रबल रूप धारण किये हुए है वह पूंजीवाद के मिटाने की है और देश को यह बात समझ लेना चाहिये तथा इसके अनुसार कार्य करना चाहिये। अतः मैं सभा से संशोधन को स्वीकार करने का निवेदन करता हूं।

(संशोधन संख्या 481 पेश नहीं किया गया।)

***श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में से 'and either fixes the amount of the compensation

[श्री प्रभुदयाल हिम्मतसिंहका]

or specifies the principles on which, and the manner in which, the compensation is to be determined' शब्द उपमार्जित किया जाये।"

यह संशोधन उन अन्य कई संशोधनों में से एक था जिनकी मैंने सूचना दी थी, पर जिनको और लोग पेश कर चुके हैं। अपने संशोधन द्वारा मैं यह स्पष्ट करना चाहता हूं कि अर्जित संपत्ति के लिये जो प्रतिकर दिया जाये वह ठीक तथा न्यायोचित हो। जहां तक मूल्य नियत करने और प्रतिकर विनिश्चित करने की रीति का विषय है, समवर्ती सूची की सप्तम अनुसूची के मद 35 में हम यह निर्धारित कर चुके हैं कि दोनों केन्द्र तथा राज्यों को यह अधिकार होगा। आज प्रधान मंत्री ने अपने भाषण में कहा है कि जो प्रतिकर दिया जायेगा वह न्यायोचित तथा ठीक होगा। यह विचारपूर्ण कथन सरकार का 6 अप्रैल, 1948 को अपनी औद्योगिक नीति की घोषणा में भी था। यही सिद्धान्त 6, अप्रैल, 1949 को माननीय प्रधान मंत्री के कथन में भी दुहराया गया था जिसमें विदेशी पूंजी को आमंत्रित किया गया था।

अतः ऐसा कोई कारण नहीं है कि प्रतिकर को स्पष्ट रूप में न्यायोचित, ठीक या न्याययुक्त, अनुच्छेद निर्माताओं को इनमें से जो भी शब्द माननीय हो वह क्यों न कहा जाये, जिससे कि इस बात में कोई संदेह न रहे कि संपत्ति अर्जित होने पर जो प्रतिकर दिया जायेगा वह ठीक तथा न्यायोचित होगा। पूंजी लगाने वालों के मनों मे विश्वास उत्पन्न करने का यह विषय है और यदि हम यह चाहते हैं कि देश का अधिकाधिक औद्योगीकरण हो और लोगों को औद्योगिक उपक्रमों में अपना धन लगाने के लिये प्रोत्साहित किया जाये, तो किसी न किसी प्रकार की ऐसी प्रत्याभूति होनी चाहिये कि जब कभी इन संपत्तियों का उपक्रमों को राज्य द्वारा अर्जित किया जायेगा तो ठीक तथा न्यायोचित प्रतिकर दिया जायेगा। यह निश्चय है कि लोगों को इससे उत्साह होगा और औद्योगिक उन्नति में भी प्रगति होगी। यह एक मनोवैज्ञानिक बात है और संभव है कि यह उत्साह भंग करे। आर्थिक दशा तो खराब है ही और यदि इस खंड से उत्साह भंग होता है तो आर्थिक दशा को यह और भी अधिक खराब करेगा। आर्थिक दशा के बिना सुधारे जिन राष्ट्र निर्माण संबंधी तथा अन्य सुधार संबंधी योजनाओं की हम उत्कंठापूर्वक आशा कर रहे हैं, उनका संचालन करना कठिन होगा। मेरे संशोधन का उद्देश्य संपत्ति अर्जन करने पर दिये जाने वाले प्रतिकर की परिभाषा करना है और मैं आशा करता हूं कि मसौदा-समिति उसे स्वीकार करेगी।

(संशोधन संख्या 485 पेश नहीं किया गया।)

***श्री बी.पी. झुनझुनवाला** (बिहार : जनरल): श्रीमान मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में से 'either fixes the amount of compensation or' शब्दों

को अपमार्जित किया जाये; और उस खंड के अन्त में ये परन्तुक जोड़ दिये जायें:

'Provided that in applying such principles, due regard shall be paid to the consideration whether the property in question is being utilised by the owner or holder so as to make a definite contribution to be sum total of the country's wealth:

Provided further that this proviso shall apply also in the case of all laws which have been passed within one year before the commencement of this Constitution and to all Bills pending at the time of the commencement of this Constitution.'"

[परन्तु इन सिद्धान्तों के पालन करने में इस बात का उचित ध्यान रखा जायेगा कि विषयान्तर्गत संपत्ति का उपयोग स्वामी या अधिकारी द्वारा इस प्रकार से तो नहीं हो रहा है कि जो देश की पूंजी की वृद्धि में सहायक हो।

यह और भी कि यह परन्तुक उन सब विधियों पर लागू होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ से पूर्व एक वर्ष के अन्तर्गत पार हो चुके हैं और उन सब विधेयकों पर लागू होगा जो इस संविधान के प्रारम्भ के समय लम्बित हैं।]

अपने संशोधन पर बोलने के पूर्व मैं अपने माननीय प्रधान मंत्री श्री जवाहरलाल नेहरू द्वारा पेश किये गये प्रस्थापित अनुच्छेद पर कुछ बातें कहना चाहता हूं। इस अनुच्छेद में दो प्रश्न अन्तर्ग्रस्त हैं। एक राज्य द्वारा संपत्ति अर्जन है और दूसरा उसके लिये प्रतिकर देना।

हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने जिस मुख्य सिद्धान्त की व्याख्या की है वह यह है कि व्यक्ति का हित संप्रदाय या राज्य के हित से निम्नतर है और कोई भी देशभक्त इस सिद्धान्त का खंडन नहीं कर सकता। दूसरे शब्दों में यदि राज्य या संप्रदाय कुछ मांग करता है तो व्यक्ति उसे बिना किसी आपत्ति के पूरा करे। संपत्ति अर्जित करते समय पूरा का पूरा प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि उसे राज्य के हित के लिये अर्जित किया जा रहा है या नहीं। दूसरी बात यह है कि जब संपत्ति अर्जित की जाती है तो संपत्ति के स्वामी को उचित प्रतिकर दिया जाता है या नहीं।

वे कौन सी परिस्थितियां हैं जिनके अधीन राज्य संपत्ति अर्जित करे? जिस रूप में हमारे माननीय प्रधान मंत्री ने इस सिद्धान्त की व्याख्या की है यदि उस रूप में उसे लागू किया जाता है तो मैं विश्वासपूर्वक समझता हूं कि राज्य को किसी विशेष व्यक्ति की संपत्ति केवल तभी अर्जित करनी चाहिये जब कि वह राष्ट्र के हित में हो, न कि केवल यह कह कर कि "हम किसी विशेष उद्योग का

[श्री बी.पी. झुनझुनवाला]

राष्ट्रीयकरण करना चाहते हैं और इस कारण हम उसका अर्जन करना चाहते हैं।" किसी विशेष उद्योग का राष्ट्रीयकरण हो सकता है कि राष्ट्र के हित में बिल्कुल ही न हो। मैं आपको इंग्लैंड का उदाहरण दूंगा जो इतना उन्नत देश है और जहां अभी-अभी परिवहन का राष्ट्रीयकरण किया गया था। और उसके प्रति यह प्रतिवेदन है (परसों समाचार पत्रों में प्रकाशित हुआ है) कि इंग्लैंड का राष्ट्रीयकरण किये हुए परिवहन—मार्ग सेवायें, जहाज पर माल उतारना चढ़ाना तथा जल मार्ग—का अन्त राज्य स्वामित्व के प्रथम वर्ष 1948 में 47,33,000 पौंड की हानि के रूप में हुआ और प्रतिवेदन को असंतोषजनक रूप में समझा गया और यह भविष्यवाणी की गई कि 1949 में और अधिक हानि का होना अवश्यम्भावी है।

जैसा मैं कह चुका हूं इस अनुच्छेद के संबंध में दो सिद्धान्त हैं जिन पर विचार करना है। एक संपत्ति अर्जन है। मेरे संशोधन का विशेषकर इस प्रथम सिद्धान्त से संबंध है। यदि कोई संपत्ति या उद्योग अर्जित किया जाता है तो इस बात पर उचित ध्यान देना चाहिये कि क्या इन सिद्धान्तों का पालन किया जा रहा है और इस अनुच्छेद के खंड (2) में वर्णित प्रतिकर के लिये सिद्धान्तों को नियत करते समय राज्य के विधान मंडल तथा संसद को यह कहना चाहिये कि उस संपत्ति से, चाहे वह जमींदारी संपत्ति हो या औद्योगिक हो, राज्य को यदि कोई लाभ है तो वह क्या है और यह भी कि सिद्धान्त निर्धारित करते हुए इस बात पर विचार करना चाहिये जिसको मैंने यहां कहा है "कि उस संपत्ति का उपयोग स्वामी या अधिकारी द्वारा इस प्रकार से हो रहा है कि जो देश की पूंजी की वृद्धि में सहायक हो" या स्वामी समाज विरोधी या राष्ट्र विरोधी कार्यों में अपनी शक्ति के साथ उस संपत्ति को भी बरबाद कर रहा है। यदि हमें यह विदित होता है कि उस निजी संपत्ति या उस निजी उद्योग का स्वामी देश की पूंजी बढ़ाने में अच्छी उन्नति कर रहा है और समाज विरोधी कार्यों में न तो व्यस्त हुआ है तथा न व्यस्त हो तो इस दशा में राज्य को उसकी संपत्ति अर्जित नहीं करनी चाहिये और यदि उसको अर्जित करना ही है तो पूर्ण प्रतिकर दिया जाना चाहिये। इस बात को विधान सभा में परिभाषित की गई औद्योगिक नीति में स्पष्ट कर दिया गया है जिसमें यह कहा गया है कि कम से कम दस वर्ष तक कुछ उद्योगों का राष्ट्रीयकरण नहीं किया जायेगा और दस वर्ष के बाद इस स्थिति पर विचार किया जायेगा कि किसी उद्योग का अर्जन करना उचित है अथवा नहीं और तब उस उद्योग को अर्जित किया जायेगा।

यदि इस सिद्धान्त को स्वीकार कर लिया जाता है जैसा कि वह विधान सभा में स्वीकार कर लिया गया है और जैसा कि हमारे आदरणीय प्रधान मंत्री द्वारा कई बार स्पष्ट किया जा चुका है तो मुझे ऐसा कोई कारण नहीं दिखाई देता है कि उद्योगपतियों में तथा जनता में इतना उथल पुथल क्यों है और पूंजी क्यों रुकी पड़ी है तथा उद्योग में क्यों नहीं लगाई जाती है।

दूसरा प्रश्न जो लोगों का ध्यान आकर्षित किये हुए है वह यह है कि यदि हमारे उद्योग अर्जित कर भी लिये जायेंगे तो उनके लिये समुचित प्रतिकर दिया

जायेगा या नहीं। इस विषय पर भी हमारे प्रधान मंत्री ने कहा है कि यदि राज्य को कोई संपत्ति अपेक्षित है तो उसके हरण करने का तो प्रश्न ही नहीं है। जनता यह देख रही है कि इस अनुच्छेद 24 पर संविधान सभा क्या करती है। अतः इस अनुच्छेद को पेश करते हुए हमारे प्रधान मंत्री ने यह बिल्कुल स्पष्ट कर दिया है कि किसी संपत्ति का हरण नहीं होगा और यदि किसी संपत्ति को अर्जित किया जायेगा तो प्रतिकर देकर अर्जित किया जायेगा।

जो प्रश्न शेष रह जाता है वह केवल यह है कि प्रतिकर किस रूप का होगा वह न्यायोचित तथा उचित प्रतिकर होगा या कोई भी प्रतिकर होगा जिसे संसद विनिश्चित करेगी और जो निर्णय तथा सिद्धान्त संसद द्वारा विनिश्चित किये जायेंगे वे न्याय्य होंगे या नहीं। बाहर जनता का ध्यान केवल इसी बात की ओर लगा हुआ है। इस बात पर मतभेद है और किसी का भी पक्ष लेने के लिये मैं सक्षम नहीं हूं। परन्तु यदि यह स्पष्ट कर दिया जाता है कि वह न्याय्य होगा तो किसी प्रकार की शंका या मूलाधिकार के अतिक्रमण करने की कोई बात नहीं रह जाती है जैसा कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव ने कहा है कि यह अनुच्छेद एक प्रकार से हमारा मूलाधिकार अतिक्रमण करने वाला है।

जैसा कि मैं कह चुका हूं प्रतिकर देते समय सबसे अधिक महत्वपूर्ण बात जिस पर विचार करना होगा वह यह है कि जिस व्यक्ति को प्रतिकर दिया जा रहा है वह उस संपत्ति का उपयोग देश की उन्नति तथा की पूंजी वृद्धि के लिये कर रहा है या नहीं। यह बात उस सिद्धान्त में शामिल हो जानी चाहिये जिसको विधि निर्धारित करे। यदि उद्योगपतियों या जमींदारों ने अपनी संपत्ति का प्रयोग अधिकतर समाजविरोधी या राष्ट्रविरोधी कार्यों में किया है और वे उपयोगी नहीं रहे हैं। तो इस बात पर, मैं समझता हूं कि, प्रतिकर के लिये राशि या सिद्धान्त नियत करते समय संसद अवश्य विचार करे। यदि ये बातें इस अनुच्छेद में आ जाती हैं तो बाजार में किसी प्रकार की हलचल की आवश्यकता नहीं होगी।

एक विचार यह भी है कि प्रतिकर उस प्रयोजन पर भी निर्भर करे जिसके लिये संपत्ति अर्जित की जाती है अर्थात् यह कि यदि वह लोकोपकारी प्रयोजन के लिये या किसी योजना के अधीन अर्जित की जाती है तो प्रतिकर कम हो सकता है। इस संबंध में मुझे यह कहना कि यदि इस बात पर इस खंड में विचार कर लिया गया है–यद्यपि मैं यह नहीं जानता हूं कि यह बात उस खंड में है या नहीं—2तो एक साधारण कोटि के मनुष्य के पास यदि कोई ऐसी संपत्ति है जो लोकोपकारी प्रयोजन के लिये आवश्यक है, अथवा किसी योजना के अन्तर्गत आ जाती है, तो उन लोगों को पूर्ण प्रतिकर मिलना चाहिये।

इन चन्द शब्दों के साथ मैं इस अनुच्छेद का समर्थन करता हूं।

श्री लक्ष्मीनारायण साहू (उड़ीसा : जनरल): सभापति जी, मेरा संशोधन निरोध प्रकार का है:

That in amendment No. 369 of List VII (seventh week) at the end of Clause (2) of the proposed article 24, the following proviso be added:—

"Provided that no compensation shall be payable to any owner or holder of any movable or immovable property, who, having owned or held

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

such property for thirty years continuously immediately before the coming into force of this Constitution, has either not habitually resided within the state where such property is situated, or has not done anything to develop such property."

सभापति जी, हम लोग जो संविधान अब तैयार कर रहे हैं उस संविधान के प्रारम्भ में जो बात हम लोगों ने प्रकाशित की थी उसमें यह आता है कि हम लोग सामाजिक, आर्थिक और राजनैतिक सुविधा हर एक आदमी को देंगे। जब हम संविधान के आरम्भ में यह बात दुनिया से कहते हैं तो यह तब हम इसे कैसे हल करेंगे इसके लिये क्या योजना हम लोग बनाते हैं इसका भी विचार करना चाहिये। इस विषय में बहुत सदस्यों ने कहा है कि सम्पत्ति जो है इस विषय का जो विचार है, यह संविधान में सबसे बड़ा विचार है। इसको बहुत अच्छी तरह से सोच विचार करके तय करना ठीक है।

पहले हम लोग स्वतंत्र भारत की क्या रूप रेखा रखते थे इसको देखना चाहिये; जब हम बराबर बोलते हैं कि हम लोग श्रेणी विभाग तोड़ देंगे और हम लोग धर्म पर यह देश नहीं रखेंगे, इसको सेक्युलर स्टेट बनायेंगे, तो किस तरह से इसको हम जरूर कर सकेंगे इस पर भी विचार करना चाहिये। डाइरेक्टिव प्रिंसिपल्स में हम लोगों ने यह भी कहा है कि हम ऐसा करेंगे कि–

"operation of the economic system does not result in the concentration of wealth and means of production in the common detriment."

जब एक एक आदमी के पास सम्पत्ति ज्यादा हो जायेगी तो हम लोगों की जो नई रूप रेखा है उसे हम कैसे बना सकेंगे। कभी नहीं बना सकेंगे। इस लिये हम इस सम्पत्ति के बारे में जब विचार करते हैं तो बहुत गहराई से विचार करना चाहिये। कुछ ले लीजिये, आज बड़े-बड़े शिल्प कारखाने हैं। उस कारखाने में एक आदमी के पास इतना पैसा ज्यादा हो जाता है, दस बरस, बीस बरस बाद और इतना बड़ा हो जाता है कि उसको मालूम नहीं होता है और कोई आदमी है, वह दिन प्रति दिन अपने रुवाब में चलता है, अपने को बहुत बड़ा आदमी समझता है, और दुनिया में सब आदमी को बहुत छोटा समझता है। इस लिये उसको तोड़ना होगा। मैं गरीब घर का आदमी हूं। बचपन से मैट्रीकुलेशन तक इस शरीर पर मैंने कमीज भी नहीं पहना था। मैं जानता हूं कि भूख क्या चीज़ है। जब में इंजीनियरिंग कालिज में पढ़ता था तब खाने को नहीं पाया तब इंजीनियरिंग कालिज को छोड़ कर आया और सुसाइड करने गया था। इसी लिये मैं चाहता हूं कि इसका प्रबन्ध बहुत अच्छी तरह से होना चाहिये। एक आदमी एक दिन में 600 रु., 800 रु. या 1,000 रु. कमाता है, तो सारे देश में हर एक आदमी के उपार्जन देखता

हूं तो औसत छह आने निकलता है। तो इससे हम जो स्वतंत्र भारत में उसमें हम आदमियों को सुख कैसे दे सकेंगे। मेरे देश उड़ीसा के लिये सब आदमी कहते हैं कि उड़ीसा बहुत कंगाल देश है और बहुत छोटा देश है, क्यों ऐसा हुआ है इसको भी देखना चाहिये। जब मैं उड़ीसा की बात कहता हूं तो कोई कोई कहेंगे कि यह प्राविंशियलिज्म है। यह प्राविंशियल्ज्म नहीं है बल्कि में जीना चाहता हूं और मेरे चारों तरफ जो आदमी रहते हैं उनकी तन्दुरुस्ती कैसे ठीक होगी और किस तरह वह अच्छी तरह रह सकेंगे यह भी मुझे देखना है। मैं आपको कहता हूं कि उड़ीसा की जितनी जमीन है वह सब एबसेंटी लैंडलार्ड के हाथ में चली गई है। वह उड़ीसा में नहीं रहते हैं बाहर रहते हैं और वह रुपया लेने को ही आते हैं। जब आप इन लोगों की जमींदारी का हाल देखेंगे तो आप जानेंगे कि इन्होंने बहुत ज्यादा रुपया भी खर्च करके इसको नहीं कमाया है। सनसेट ला में उड़ीसा की ज़मींदारी चली गई। उस समय हाईकोर्ट कलकत्ता में था। कटक में नहीं था, इसलिये बहुत आदमियों की जमींदारी चली गई। इस तरह उड़ीसा की दो तिहाई जमीन एबसेंटी लैंडलार्ड के हाथ में चली गई। इस वजह से उड़ीसा कैसे बढ़ सकता है। मैं इसी लिये चाहता हूं कि ऐसा प्रबन्ध करना चाहिये जिसमें हम एक दम निश्चिन्त हो सकें कि जिन जिन लोगों के साथ में बहुत जमीन है और जो कि इसकी उन्नति भी नहीं करते हैं और 30 वर्ष तक उसको भोग चुके हैं। उनको कुछ नहीं देना चाहिये। उनको तो कुछ देना ही नहीं। हम दुनिया नये ढंग से बनाना चाहते हैं और सम्पत्ति को एक दम उठा देना चाहते हैं। और हम लोगों का पहले भी यह आदर्श था:–

अर्थमनर्थं भावय नित्यम्
नास्ति ततः सुखलेशः सत्यम्
पुत्रादार्य धनभाजां भीतिः
सर्वत्रैषां कथिता नीतिः

यह शंकराचार्य का है। इस आदर्श पर हम इस देश के लोगों को तैयार करते थे। फिर पश्चिम से एक हवा आई जिसमें कम्पिटीशन की स्पिरिट थी और उन लोगों को उस ढंग से चलना पड़ा। उस ढंग से चलने से यह हुआ कि जो छोटा आदमी था वह पिस गया और जिसकी ज्यादा ताकत थी वह कांकरर की माफिक हो गया है। उनके पास कोई आईन नहीं है। जिसका जोर था उसी का मुल्क हो गया। इसी लिये मैं कहना चाहता हूं कि हम लोग जो नये ढंग से हिन्दुस्तान को बनाना चाहते हैं तो इस नये ढंग की रूप रेखा अच्छी तरह देखकर और हर एक प्रान्त में इसका कैसे सुप्रबंध हो सकता है इसका सोच विचार हमें करना चाहिये। मैंने तो अपने प्रान्त का ख्याल करके यह प्रोवाइजो रखा है। आप जो कुछ करते हैं ठीक है। तो भी भाई जब इसको आप नहीं करेंगे तो मेरे देश के लिये ठीक नहीं होगा। इसी लिये मैंने यह प्रोवाइजो दिया है। मैं चाहता हूं कि आप लोग अच्छी तरह से सोच विचार करें।

आदिवासियों में यह प्रबन्ध है कि जितनी जमीन है वह जमीन सबको ठीक तौर से बांट की जाती है और बीच बीच में जब किसी के पास बढ़ जाती है तो उसको दस बारह बरस में फिर ठीक कर लेते हैं। हम लोगों का जो समाज है वह अचलायतन है। वह बहुत दिन से हिमालय के माफिक चुप करके रहा है, वह अचल होकर रहा है, चलता नहीं है और जो पश्चिम से आये उनके हाथ

[श्री लक्ष्मीनारायण साहू]

जो लोग मिल गये वह अपने आदमियों के साथ बहुत अत्याचार करने लगे और उन्होंने उनको छोटा कर दिया। इसी लिये अभी जब हम नया भारत बनाते हैं तो हम को इस तरह का एक प्रोवीजन रखना चाहिये, इतना ही मैं कहना चाहता हूं।

***अध्यक्षः** श्री महबूब अली बेग, संख्या 493।

***श्री महबूब अली बेग** (मद्रास : मुस्लिम): मेरा एक संशोधन 482 भी है।

***अध्यक्षः** आप उसे भी पेश कर सकते हैं।

***श्री महबूब अली बेगः** श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में 'unless the law provides for compensation for the property taken possession of or acquired and either fixes the amount of the compensation, or specifies the principles on which, and the manner in which the compensation is to be determined' शब्दों के स्थान में 'unless due compensation is paid for' अथवा विकल्पतः 'unless the law provides for due compensation' शब्द रखे जायें।"

श्रीमान, मैं यह भी पेश करता हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (2) में यह जोड़ दिया जाये:

'(3) no such law as is referred to in clause (2) of this article made by the legislature of the State shall have effect, unless such law receives the assent of the President.'"

[(3) राज्य के विधान मंडल द्वारा बनाई गई कोई ऐसी विधि, जैसी कि खंड (2) में निर्दिष्ट है, तब तक प्रभावी नहीं होगी जब तक कि ऐसी विधि को राष्ट्रपति की अनुमति न मिल गई हो।]

श्रीमान, मेरे और संशोधन पेश हुए संशोधनों में आ चुके हैं अतः मैं उन्हें पेश नहीं करना चाहता हूं; पर उन पर मैं अपने विचार प्रकट करूंगा। श्रीमान, मेरे संशोधनों के दो प्रयोजन हैं। प्रथम यह कि उनमें इस बात का प्रयास है कि संपत्ति पर व्यक्ति के अधिकार को मूल अधिकार के रूप में घोषित किया जाये जो विधान-मंडल अथवा किसी अन्य प्राधिकार से स्वतंत्र हो। दूसरा यह कि मेरे संशोधन

में यह प्रयास किया गया है कि इस अधिकार को निश्चित रूप से न्याय्य बना दिया जाये। यद्यपि लोक प्रयोजनों के लिये व्यक्तियों की संपत्ति के अर्जन करने का अनापत्तिनीय अधिकार सरकार को होना चाहिये, परन्तु संपत्ति के स्वामियों को समुचित मूल्य से कम मूल्य देकर संपत्ति छोड़ने के लिये वह बाध्य नहीं कर सकती है और जिस व्यक्ति की संपत्ति अर्जित की जाती है न्यायालय द्वारा उसका मूल्य निश्चित कराने के उस व्यक्ति के अधिकार को नहीं छीना जा सकता है। हमारे राज्य ने अभी तक निजी संपत्ति को मिटाया नहीं है, किसी रूप में भी इस संविधान में न तो उसे मिटाया गया है और न मिटाया जा रहा है। मैं अनुच्छेद 13, खंड (1) उपखंड (च) की ओर निर्देश कर रहा हूं, अर्थात् यह कि "इस अनुच्छेद के अन्य उपबंधों के अधीन सब नागरिकों को संपत्ति के अर्जन, धारण और व्ययन का अधिकार होगा।" और जो उपखंड इस अधिकार पर नियंत्रण रखता है वह उपखंड (5) है, और उसमें यह कहा गया है "उपखंड (घ), (ङ) और (च) की कोई बात उक्त उपखंडों द्वारा दिये गये अधिकारों के प्रयोग पर निर्बन्धन लगाने वाली किसी वर्तमान विधि के प्रवर्त्तन पर प्रभाव, अथवा वैसे निर्बन्धन लगाने वाली कोई विधि बनाने में राज्य के लिये रुकावट, न डालेगी.....।" इस उपखंड (5) में भी जो इस मूलाधिकार में रूपभेद करता है आप इन अधिकारों में से किसी अधिकार के प्रयोग पर केवल निर्बन्धन लगा सकते हैं।

अतः श्रीमान, यह स्पष्ट है कि हमारे संविधान में निजी संपत्ति के मिटाने की वैसी प्रस्थापना नहीं है जैसी संयुक्त राज्य सोवियत रूस के संविधान में है। संयुक्त राज्य सोवियत रूस ने स्पष्टतया निजी संपत्ति को मिटा दिया है। हमारी समाज का आधार अभी तक पारिभाषिक रूप में कथित अर्थव्यवस्था की पूंजीवादी प्रणाली पर है जिसका यह अभिप्राय है कि संपत्ति व्यक्तियों द्वारा, न कि समस्त लोक द्वारा संधृत है। हमारी प्रणाली इंग्लैंड और अमरीका में प्रचलित प्रणाली के समान है और अमरीका के संविधान में यह स्पष्ट निर्धारित है कि राज्य किसी व्यक्ति की उसके जीवन, स्वातंत्र्य या संपत्ति से विधि की उचित आदेशिका के बिना वंचित नहीं किया जा सकता है। इंग्लैंड में भी यही बात है। उदाहरणार्थ इंग्लैंड की वर्तमान समाजवादी सरकार ने जब निजी स्वामियों से खनिजाधिकार अर्जित किये तो उसने खानों का जो मूल्य न्यायालयों ने निश्चित किया उससे अधिक प्रतिकर दिया था।

अतः श्रीमान, उनका समाज निजी संपत्ति के अभिज्ञान पर आधृत है और अर्थ-व्यवस्था की पूंजीवादी प्रणाली पर आधृत है। जिन लोगों की संपत्ति अर्जित की जाती है उनको उचित मूल्य मिलना चाहिये और जो तंत्र इस बात को निश्चित करेगा कि ठीक मूल्य क्या है वह न्यायालय है। अतः श्रीमान, निजी संपत्ति के रूप में संपत्ति के दो महत्वपूर्ण तथा अनिवार्य सहयोगी बातें यह हैं कि ये अधिकार मूलाधिकार हैं और ये अधिकार निस्संदेह न्याय्य हैं, पर हमको यह अधिकार है कि हम निजी संपत्ति को बिल्कुल ही मिटा दें, जो हमने अभी तक नहीं किया है। यदि निजी संपत्ति को मिटा दिया जाये और लोगों को निःशुल्क चिकित्सा तथा निःशुल्क शिक्षा का आश्वासन दे दिया जाये और उनको नौकरी का आश्वासन दे दिया जाये तो बात दूसरी है। समाज की रूपरेखा बदली नहीं है।

[श्री महबूब अली बेग]

आज इस समय जिस बात का मैं प्रयास कर रहा हूं वह यह है कि यद्यपि अनुच्छेद 13 के अधीन और स्वयं इस अनुच्छेद के खंड (1) के अर्थ के अधीन हम निजी संपत्ति अभिज्ञात करते हैं, पर खंड (2) के अधीन जिस बात का हम प्रयत्न कर रहे हैं वह यह है कि हम विधान-मंडल को जो कुछ वह चाहें उतना प्रतिकर मंजूर करने या संपत्ति का मूल्यांकन करने के सिद्धान्त बनाने की शक्ति दे रहे हैं। श्रीमान, अब हमारे समाने यह प्रश्न है कि क्या किसी संविधान के अधीन जिसमें मूलाधिकार निर्मित हैं इस बात की अनुमति है कि देश के विधान-मंडल को उन मूलाधिकारों पर विचार करने, उनको बिगाड़ने तथा उनका न्यूनन करने की शक्ति दी जाये। मेरा निवेदन यह है कि इस अनुच्छेद को उस अध्याय में स्थान मिला है जो मूलाधिकार पर विचार प्रस्तुत करता है। मूलाधिकार वे हैं जो विधान-मंडलों और विशेषकर संसदात्मक लोकतंत्र में पक्षात्मक विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार से परे हैं। ज्यों ही वे विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार के अधीन हो जाते हैं त्यों ही वे मूलाधिकार नहीं रहते हैं। अनुच्छेद 24 का जैसा प्रधान मंत्री ने संशोधन किया है उसके अधीन आप जनता को क्या मूलाधिकार दे रहे हैं? वह कुछ भी मूलाधिकार नहीं हैं। यदि मूलाधिकार संबंधी अनुच्छेद के अन्तर्गत इन अधिकारों का वर्णन ही न किया जाता तो अच्छा होता। प्रधान मंत्री के भाषण से जो बात मैंने समझी वह केवल यह है, "हां", आपके अधिकार अभिज्ञात किये जाते हैं" और "जब उनको अर्जित किया जायेगा तो आपको प्रतिकर दिया जायेगा।" "प्रतिकर की राशि जो आप को दी जायेगी वह क्या होगी इसका न्यायालय द्वारा निश्चय नहीं होगा।" सत्य तो यह है कि उसका विधि तथा न्यायालय से कोई संबंध नहीं होगा। प्रतिकर क्या होगा यह विनिश्चय करने की शक्ति वह न्यायालय को सौंप देगा। वह विधान मंडल को संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न कहता है। यह कहना अधिक ठीक होगा कि संविधान 'संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न' है। विधान मंडल, कार्यपालिका तथा न्यायपालिका और हम सब पर संविधान का शासन है। किसी विधान मंडल को संविधान के उपबंधों का अतिक्रमण करने की शक्ति नहीं मिल सकती है। जब तक लोकेच्छा द्वारा संविधान का संशोधन न हो तब तक वह मान्य है।

अतः श्रीमान, संविधान इस रूप में संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न है कि जनता संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न है और यदि जनता संविधान में परिवर्तन करने के विशिष्ट प्रयोजन से सदस्यों का निर्वाचन करती है तो यह कहना सही है कि वह निकाय जिसे जनता ने संविधान में परिवर्तन करने के लिये निर्वाचित किया है संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न है। मूलाधिकार का अतिक्रमण करते हुए विधान-मंडल के संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न होने की बात कदापि ठीक नहीं है। चाहे आप अनुच्छेद 24 के अधीन मूलाधिकार की घोषणा करें या न करें। यदि अनुच्छेद 24 को न तो अधिनियमित किया जाता और न प्रस्थापित किया जाता तो अच्छा होता, तब तो मैं इस बात को समझ सकता था। यदि विधान मंडल कि लिये जैसे चाहे वैसे प्रतिकर देना विधि के अधीन होता तब तो उसका यह अधिकार होता। अतः श्रीमान, यह कहना मिथ्या, असत्य तथा भ्रमात्पादक है कि अनुच्छेद 24 के अधीन हम संपत्ति के अधिकार घोषित कर रहे हैं।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य यह बात पहले कह चुके हैं।

***श्री महबूब अली बेग:** इस कारण जो संशोधन संख्या 482 मैंने पेश किया है उसमें वह प्रस्थापना है कि प्रतिकर देने के विषय में राशि नियत करने को तथा उन सिद्धान्तों के निर्धारित करने को जिनके अनुसार प्रतिकर विनिश्चित किया जायेगा, विधान-मंडल के क्षेत्राधिकार से पूर्णतया पृथक् कर दिया जाये। यदि यह आवश्यक हो कि किसी भूमि को लोक प्रयोजन के लिये अर्जित किया जाये तो वह यह कहते हुए एक अधिनियम पार करे कि प्रतिकर देकर इस संपत्ति को अर्जित किया जायेगा। प्रतिकर क्या हो, इस विषय पर न्यायालय द्वारा विचार होना चाहिये।

इसके बाद, श्रीमान, खंड (3) के संबंध में एक बात है। मैं यह कह चुका हूं कि राज्य-विधान-मंडल या संघ-विधान-मंडल जो विधि पार करे उसे राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी चाहिये। इस खंड के प्रस्थापित रूप में यह कहा गया है 'ऐसी विधि को, राष्ट्रपति के विचार के लिये रक्षित किये जाने के पश्चात्।' मैं यह चाहता हूं कि यह बात स्पष्ट कह दी जाये कि उन सब विधियों को, जिनके द्वारा संपत्ति अर्जित करने का प्रयास किया गया हो, आवश्यक रूप से राष्ट्रपति की अनुमति प्राप्त होनी चाहिये।

श्रीमान, खंड (4) के संबंध में मुझे एक शब्द कहना है और वह यह है। प्रधान मंत्री ने आज प्रात:काल यह कहा था कि खंड (1) के अधीन जब तक विधान-मंडल अपनी शक्तियों का दुरुपयोग न करे तब तक वह न्यायालय के क्षेत्राधिकार से परे रखा गया है। संभवत: उनका आशय यह था कि यदि विधान मंडल ऐसा प्रतिकर मंजूर करे जो केवल नाममात्र का ही हो, तो न्यायालय हस्तक्षेप कर सकता है। श्रीमान, मेरा प्रश्न यह है। आप उन विषयों में लाभ क्यों नहीं उठाने देते जो खंड (4) के अधीन आते हैं? मैं यह पूछता हैं कि क्या यह उचित है कि एक व्यक्ति जिसको उसकी संपत्ति से वंचित किया गया है उससे यह प्रश्न करने का अवसर भी छीन लिया जाये कि उसे जो प्रतिकर दिया गया है वह केवल नाममात्र का है अथवा वह कानून के प्रति धोखा है? जिस मनुष्य को इस प्रकार से सताया गया है उसे हम न्यायालय में उस विषय को ले जाने के उसके अधिकार से तथा न्यायालय से यह विनिश्चित करने के लिये निवेदन करने से क्यों वंचित करें कि आया वह प्रतिकर नाममात्र का है अथवा आया वह कानून के प्रति धोखा है, जब कि खंड (2) के अधीन इन परिस्थितियों में यह अधिकार दिया गया है? इस कारण यह बहुत ही अयुक्तियुक्त है और जैसा कि मेरे माननीय मित्र पंडित ठाकुरदास भार्गव और श्री जसपतराय कपूर ने स्पष्ट कहा है, ऐसी बात विधि के क्षेत्र में नई है, अन्यायपूर्ण, अनुचित तथा विभेदात्मक है। अत: खंड (4) को निकाल देना चाहिये।

खंड (6) के प्रति मेरा संशोधन यह है। जब कुछ स्थानीय विधान मंडलों ने कुछ अधिनियम पार किये थे तो उस समय जो विधि प्रचलित थी वह भारत शासन अधिनियम, 1935 की धारा 299 थी। जमींदारी उन्मूलन करने के लिये विधियां अधिनियमित की गई थीं और वह विधि प्रयोज्य थी। मैं यह पूछता हूं कि क्या यह उचित है कि आप उन लोगों को न्यायालय जाने और यह विनिश्चय करने के लिये निवेदन करने से रोकें कि वे अधिनियम शक्ति के अन्तर्गत हैं या बहिर्गत?

[श्री महबूब अली बेग]

इस विषय में भी, जैसा कि मैं कह चुका हूं कि व्यक्ति को खंड (2) के अधीन न्यायालय में यह सिद्ध करने का, कि प्रतिकर केवल नाममात्र का है, जो कुछ भी अवसर था वह भी छीन लिया गया है। मैंने अभी तक कोई ऐसा संविधान नहीं देखा है जिसमें जो अधिकार पहले दे दिये गये हों और जिनको कुछ विधियों के अधीन अधिनियमित कर दिया गया हो उनको जानबूझ कर छीन लिया गया हो। श्रीमान, जैसा मैं कह चुका हूं इस विषय में भी यह बात बहुत अन्यायपूर्ण, अनुचित तथा विभेदात्मक है।

अपने बैठने से पूर्व माननीय मित्र श्री कला वैंकट राव द्वारा कहीं गईं कुछ बातों के प्रति मैं एक शब्द कहूंगा। जिस प्रान्त के वे राजस्व मंत्री थे उसके विधान मंडल से मैं सहमत था कि ज़मींदारी का उन्मूलन किया जाये। उनके मन में इस विचार के आने से पूर्व सन् 1938 में जमींदारी उन्मूलन समिति के सदस्य के रूप में मैंने इस बात का स्पष्ट रूप से समर्थन किया था कि इन जमींदारियों को मिटा दिया जाये क्योंकि वे काल-विरुद्ध हैं और उनसे अब कोई प्रयोजन सिद्ध नहीं होता है। मेरी यह भी धारणा थी कि इन संपत्तियों के स्वामी किसान हों न कि जमींदार। यहां तक मैं उनसे सहमत हूं। पर मैंने देखा कि सन् 1802 से सही या गलत रूप से, मेरे विचारानुसार गलत रूप से, स्थायी बंदोबस्त विनियम 25 द्वारा स्वामित्वाधिकार जमींदारों को सौंपे गये थे।

***अध्यक्ष:** इस विषय का लेना आवश्यक नहीं है।

***श्री महबूब अली बेग:** मैं केवल बता रहा हूं। मेरे मित्र कला वैंकट राव ने यह गलत कहा कि उस विनियम द्वारा स्वामित्वाधिकार जमींदारों को नहीं सौंपे गये। स्वयं 'सनद मिल्कियत इस्तमरारी' पद का जब अनुवाद किया जाता है तो उसका 'भूमि में स्वामित्व की स्वामी बन्दोबस्ती सनद' अर्थ होता है। केवल अधिनियम द्वारा ही नहीं वरन् जैसा कि मैंने कहा था उस विधान के आधार पर, जो मेरे विचारानुसार गलत पार हुआ था, सर्वोच्च न्यायालय की यह धारणा है कि जमींदार ही स्वामी है। इस आधार पर वय, रहन तथा अन्य प्रकार के बहुत से काम हुए। 150 वर्ष के काल में इन जमींदारों तथा उन लोगों ने जिनको जमींदारों ने अधिकार हस्तान्तरण किये, पृथक् सत्ता के वैध अधिकार प्राप्त कर लिये।

प्रतिकर के प्रश्न पर मैं अपने माननीय मित्र से मतभेद रखता हूं। मैंने कहा था कि प्रतिकर देना चाहिये। उनके तथ्य तथा विधि संबंधी कथन में जो कई असत्य बातें हैं, मैं उनका निर्देश नहीं करना चाहता हूं।

अत: यह प्रश्न कि जमींदारी उन्मूलन करने वाले अधिनियमों में जो प्रतिकर दिया गया है वह न्याययुक्त, ठीक तथा न्यायोचित है या वह केवल नाममात्र का है, इस पर विनिश्चय करना न्यायालय पर छोड़ दिया जाये। जैसा कि मैं कह चुका हूं जब तक हम समाज की रूप रेखा को पूंजीवादी प्रणाली की समाज से समाजवादी समाज में परिवर्तित नहीं करते हैं जिसमें व्यक्ति संपत्ति का स्वामी नहीं होता है

वरन समस्त लोक या राज्य या सहयोगी अभिकरण स्वामी होता है, तब तक हम इस तथ्य से बाहर नहीं हो सकते हैं कि उचित और ठीक प्रतिकर दिया जाये।

श्रीमान, यह कहने के लिये मैं विवश हूं कि इस विषय में हम बहुत दृढ़ तथा साहसी नहीं है। यदि हम यह समझते हैं कि समाज में परिवर्तन होना चाहिये तो हमें कमर कस कर तैयार हो जाना चाहिये और साहसपूर्वक तद्नुसार कार्य करना चाहिये। संपत्ति पर इस प्रकार के विचार से हम कठिनाइयों में पढ़ जायेंगे।

***अध्यक्षः** माननीय सदस्य अपनी बातें दुहरा रहे हैं।

***श्री महबूब अली बेगः** जैसा कि श्री नज़ीरुद्दीन अहमद ने पूछा था लोक पर और विशेष कर उन लोगों पर, जिनसे हम यह कहते हैं, जिनसे सरकार यह कहती है कि वे कारखानों तथा औद्योगिक उद्यमों में अपना धन लगायें, इसका क्या प्रभाव पड़ेगा? क्या वे ऐसा करने का साहस करेंगे? क्या कोई व्यक्ति अपने धन को किसी उद्यम में लगाने के लिये अग्रसर होगा? वह इसे पढ़ेगा और कहेगा.....।

***अध्यक्षः** मैं समझता हूं कि आपने पर्याप्त समय से अधिक समय ले लिया है। अब आप समाप्त करिये।

***श्री महबूब अली बेगः** श्रीमान.....।

***माननीय सदस्यगणः** शान्ति, शान्ति।

***अध्यक्षः** संख्या 499 ।

***श्री अजीत प्रसाद जैन** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, मैं उसे पेश करना नहीं चाहता हूं।

***अध्यक्षः** संख्या 500 ।

***श्रीमती रेणुका रे** (पश्चिमी बंगाल : जनरल): श्रीमान, मैं प्रस्ताव पेश करती हूं:

"कि सूची 7 (सप्तम सप्ताह) के संशोधन संख्या 369 में प्रस्थापित अनुच्छेद 24 के खंड (4) के स्थान में यह खंड रखा जाये:—

'(4) No law making provision as aforesaid shall be called in question in any court either on the ground that the compensation provided for is inadequate or that the principles and the manner of compensation specified are fraudulent or iniquitous.' "

[श्रीमती रेणुका रे]

[(4) उपरोक्त किसी भी उपबंध बनाने की विधि पर किसी न्यायालय में, इस आधार पर कि जिस प्रतिकर का उपबंध किया गया है वह अपर्याप्त है या प्रतिकर के उल्लिखित सिद्धान्त और रीति में धोखा है या वे न्यायोचित नहीं हैं, आपत्ति नहीं की जायेगी।]

इतनी देर के बाद भी मैं इस संशोधन को पेश करने के लिये विवश हूं क्योंकि हमारे सामने एक बहुत ही वास्तविक तथा सच्ची कठिनाई है। जिस मसौदे पर हम विचार कर रहे हैं उसके खंड (4) और (6) से हमें यह विदित होता है कि संपत्ति के लिये प्रतिकर के विषय का लम्बित विधान या वह विधान जो अधिनियमित किया जा चुका है इनको अन्य प्रकार की संपत्ति पर प्रतिकर से भिन्न आधार पर समझा जायेगा। यदि किसी प्रकार की जमींदारी संपत्ति के लिये किसी अपवाद खंड का रखना आवश्यक हो जाता है—असल बात पर आते हुए इससे आशय यह है कि संयुक्तप्रान्त, मद्रास और बिहार के जमींदारी विधेयक का अपवाद करना है; तो अनिवार्यत: यह निष्कर्ष निकलता है कि जमींदारी संपत्ति के सहित अन्य सब संपत्ति अन्य क्षेत्रों में न्याय्य होनी चाहिये। इसका आशय यह है कि संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद के प्राधिकार पर न्यायालय द्वारा आपत्ति की जायेगी। मैं जानती हूं कि कुछ वकीलों में इस बात पर मतभेद है। कुछ वकीलों की यह धारणा है कि यद्यपि अन्य प्रकार की संपत्तियों को न्याय्य रूप में शामिल किया गया है, परन्तु न्यायालय संसद के प्रतिकर के सिद्धान्त निर्धारित करने के प्राधिकार पर तब तक आपत्ति नहीं करेगी जब तक कि धोखे का उद्देश्य न हो। कुछ वकील संयुक्त राष्ट्र अमरीका के सर्वोच्च न्यायालय के इस विचार का समर्थन करते हैं कि 'प्रतिकर' शब्द का आशय बराबर का मूल्य है। मैं न तो वकील हूं और बाल की खाल खींचने के तर्कों में पड़ने की न मुझ में योग्यता है और न अधिकार ही है, जो कि वकीलों की बड़ी प्रिय वस्तु है, पर इस विषय से अनभिज्ञ होने के नाते मैं यह जानना चाहूंगी कि यह अन्तर क्योंकर किया गया है। क्या यह इसलिये है कि संयुक्तप्रान्त के जमींदारी विधेयक के उपबंधों से धोखे का उद्देश्य प्रकट होता है या उसके उपबंधों के अधीन प्रतिकर नहीं दिया जायेगा? ऐसा क्यों है कि संयुक्तप्रान्त, मद्रास और बिहार के जमींदारी विधेयकों के लिये विशेष उपबंध बनाये गये हैं। जो वकील यह विचार रखते हैं कि यदि धोखे का उद्देश्य नहीं है तो न्याय्यता पर आपत्ति नहीं की जायेगी; यदि वे ठीक हैं तो खंड (4) और (6) का शामिल करना आवश्यक नहीं है। जैसा कि हम देख सकते हैं समस्त वैध परिभाषाओं से विहीन स्थिति यह हो जाती है कि खंड (4) और (6) के अन्तर्गत आई हुई संपत्ति के अतिरिक्त अन्य संपत्तियों के विषय में अन्तिम शब्द संपूर्ण प्रभुत्व संपन्न संसद का नहीं होगा वरन् न्यायालय का होगा। मैं यह पूछना चाहूंगी कि इस प्रक्रिया के लिये कौन सा न्याय है? और भी अन्य न्याय्य मूलाधिकार है, परन्तु वे अधिकार भी परन्तुकों के अधीन हैं कि यह विधि के प्राधिकार के अधीन है। उदाहरणार्थ, भाषण तथा अभिव्यक्ति स्वातंत्र्य का अधिकार, निरायुध स्वतंत्रता से एकत्रित होना, संस्थाओं या संघों का निर्माण करना—इन सबके लिये परिसीमायें हैं जिनके कारण वे संसद के अधिकार के अधीन आ जाते हैं। 1947 में ऐसा क्या न्याययुक्त प्रमाण है जिससे हम संपत्ति को एक बहुत ही भिन्न आधार पर रख सकते हैं? पंडित नेहरू ने आज प्रात:काल अपने भाषण में कहा गया था कि

संपत्ति की विचारधारा की परिवर्तनशील है। संपत्ति के साथ सटी हुई अक्षुण्णता अब नहीं रही है। आज जब कि हम इस विषय को विनिश्चित कर रहे हैं तो हमें इस पर इस प्रकार विनिश्चय करना चाहिये कि संसद का ही प्राधिकार सर्वोच्च होगा और समस्त कालों के लिये रूढ़ गत हित का निर्धारण हमें नहीं करना चाहिये।

यह सत्य है कि संसद कभी कभी शीध्रता में विधान पार कर देती है। ठीक है, उसके लिये हमारे पास द्वितीय आगार है जैसा कि पंडित जी ने आज प्रातःकाल बताया था। इसके अतिरिक्त इस अनुच्छेद का खंड (3) है जो राष्ट्रपति को—केन्द्रीय सरकार को अन्तिम शक्ति प्रदान करता है। क्योंकि किसी ऐसे विधान के प्रवर्त्तन में आने से पूर्व राष्ट्रपति को उस पर अनुमति देनी होगी। मैं समझती हूं कि यहां जो रक्षा कवच हैं वे वास्तव में पर्याप्त हैं। हमारा यह काम नहीं है कि हम ऐसे उपबंध रखें कि जिनके कारण न्यायालय द्वारा भिन्न-भिन्न निर्वचन किये जायें। जब कि कुछ वकीलों में ही भिन्न-भिन्न निर्वचन हो सकते हैं तो उन निर्वचनों की संख्या पर विचार करिये जो भिन्न-भिन्न न्यायालयों द्वारा भिन्न-भिन्न विनिश्चयों के रूप में हमारे सामने आयेंगे। जैसा कि मैंने पहले कहा था यह वास्तव में वकीलों की प्रिय वस्तु होगी और मुकदमेबाजी और भी अधिक फैल जायेगी।

***अध्यक्षः** आप इस बात को पुष्ट कर चुकी हैं।

***श्रीमती जी. रेणुका रेः** संपत्ति के अपहरण का प्रश्न नहीं है। राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण का प्रश्न वास्तव में आज नहीं उठ रहा है। ये बातें तो इस विषय को अस्पष्ट बनाने के लिये उठाई गईं हैं। सरकार अपनी आर्थिक नीति निर्धारित कर चुकी है। उस नीति में सिवाय जमींदारी संपत्ति के उन्मूलन के किसी भी प्रकार के राष्ट्रीयकरण या समाजीकरण का समावेश नहीं है।

***श्रीमती जी. दुर्गाबाई** (मद्रास : जनरल): श्रीमान, क्या आपके द्वारा मैं वक्ता से यह जान सकती हूं कि यदि इस प्रकार नियत किया गया प्रतिकर कपटमय है तो क्या उनका इरादा यह है कि इसे फिर भी न्यायालय के क्षेत्राधिकार से बाहर रखा जाये?

***श्रीमती रेणुका रेः** मैं यह कहती हूं कि यह कौन विनिश्चय करेगा कि क्या कपटमय है? क्या संयुक्तप्रान्त का जमींदारी विधेयक या उसमें नियत किया गया प्रतिकर आज कपटमय है, और यदि वह नहीं है तो हम एक अपवाद खंड का उपबंध क्यों कर रहे हैं। इस कारण मैं कहती हूं कि इस विषय में संसद को ही सर्वोच्च शक्ति होनी चाहिये और इस आधार पर भी कि वह कपटमय है संसद के विनिश्चयों पर आपत्ति करना न्यायालय पर नहीं छोड़ा जा सकता है। न्यायालय तो यह भी विनिश्चित कर सकता है कि आधा मूल्य तक देना कपटमय है। जब तक यह संशोधन शामिल नहीं किया जायेगा तब तक उसे ऐसा करने से रोकने के लिये कोई बात नहीं है।

जैसा कि मैंने कहा था वादहेतुओं में अस्पष्टता हो गई है। संपत्तिहरण करने का प्रश्न प्रस्तुत कर दिया गया है। इस समय संपत्तिहरण का कोई प्रश्न नहीं है और मैं नहीं समझती हूं कि भावी संसद में भी जब तक संविधानिक प्राधिकार

[श्रीमती रेणुका रे]

है, जब तक उत्तरदायित्वपूर्ण सरकार है, बिना प्रतिकर दिये संपत्तिहरण का प्रश्न कभी उठे। यहां तक कि वे लोग भी, जो एक नवीन आर्थिक रूप रेखा चाहते हैं और जो वर्तमान अर्थव्यवस्था को शनैः शनैः एक नवीन अर्थव्यवस्था में परिवर्तन करने में विश्वास करते हैं जिसमें आर्थिक न्याय्य का प्रचलन है, यह नहीं चाहते हैं कि निराश्रितों और निर्धनों के एक नये वर्ग का निर्माण किया जाये। राज्य के लिये एक नया उत्तरदायित्व पैदा करना न तो हम चाहते हैं और न भावी सरकार चाहेगी। अतः न वर्तमान और न भावी संसद बिना प्रतिकर के संपत्तिहरण करेगी क्योंकि उनका उद्देश्य धन के विषम विभाजन में कमी करना होगा न कि किसी ऐसे नये वर्ग का निर्माण करना जो राज्य के लिये चिन्ता का विषय बने।

***अध्यक्षः** आशा करता हूं कि अब आपने भाषण समाप्त कर दिया।

***श्रीमती रेणुका रेः** मुझे एक या दो बातें ही और अधिक कहनी हैं।

***अध्यक्षः** और अधिक बातें या और अधिक शब्द?

***श्रीमती रेणुका रेः** और अधिक बातें, श्रीमान। आज के भाषणों में एक और प्रश्न जो उठाया गया है वह यह है कि वर्तमान आर्थिक कठिनाइयों के कारण इस खंड को मसौदे में रखना हमारे लिये आवश्यक है। श्री हिम्मतसिंहका ने यह प्रश्न किया था कि यदि आप इस विषय पर पूंजीवादियों का समाधान नहीं करते हैं तो उत्पादन में किस प्रकार वृद्धि होगी। मैं यह कहती हूं कि पूंजीवादियों को हम सुविधाओं पर सुविधायें देते हुए चले जा रहे हैं पर फिर भी उत्पादन में अब तक कोई वृद्धि नहीं हुई है। राष्ट्र के लिये पूंजी तथा उत्पादन वृद्धि का विषय आज एक बहुत ही आवश्यक विषय है। यदि पूंजीवादी इसके अनुसार नहीं चलते हैं तो इस लक्ष्य के लिये हमें साधन खोजने पड़ेंगे। यदि वे इस कार्य में सहायक नहीं होते हैं तो हम उनके धन के आसरे नहीं बैठे रहेंगे पर मैं यह नहीं समझ पाती कि इस अनुच्छेद का इस बात से क्या संबंध है। यह कोई ऐसा उपबंध तो नहीं है जो विधान मंडल के किसी अधिनियम में सन्निविष्ट किया जा रहा हो पर यह तो एक ऐसी बात है जिसे भविष्य के स्थायी संविधान के लिये हम विचार कर रहे हैं।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व मैं यह बताना चाहूंगी कि यदि हम संविधानिक उपचारों को नहीं रखेंगे, यदि हम भविष्य को शृंखला में जकड़ देंगे तो एक समय ऐसा आयेगा जब अतिरिक्त संविधानिक उपचारों की शरण ली जायेगी और उस समय इस संविधान को रद्दी कागज के समान समझा जायेगा।

श्रीमान, समाप्त करने के पूर्व मैं पंडित जवाहरलाल नेहरू से विशेषकर बहुत ही निवेदन करूंगी, जो सबसे अधिक आर्थिक न्याय तथा सामाजिक न्याय में विश्वास करते हैं, कि वे मेरे संशोधन को स्वीकार करें और खंड (4) के स्थान में मेरे संशोधन को रखें। मसौदा समिति से मैं निवेदन करती हूं कि यदि उसमें कोई मतभेद

है तो यह संशोधन उसे मिटा देगा। यदि उसका यह विश्वास है कि इस उपबंध का आशय न्याय्यता नहीं है तो मेरे संशोधन पर उसकी क्या आपत्ति हो सकती है?

अन्त में मैं इस सभा से निवेदन करती हूं कि हम कोई ऐसी बात स्वीकार न करें जिसके बारे में हमारी सन्तति यह कहे कि अन्य समस्त अधिकारों की अपेक्षा संविधान में रूढ़गत स्वार्थों के भरने में हमारी रुचि तथा चिन्ता अधिक रही। उन्हें यह कहने का अवसर न दीजिये कि संपत्ति अधिकार ही एकमात्र मूलाधिकार था जिसके प्रति हमने बहुत ही उत्कंठा प्रकट की क्योंकि इस रीति से अनुच्छेद 24 का सन्निवेश कर उसी अधिकार को हमने दुहरा आश्वासन दिया—हम यह न भूलें कि किसी भी आर्थिक अधिकार को मूलाधिकारों में सन्निविष्ट नहीं किया गया है—अन्य सब निदेशकों में भविष्य के लिये पवित्र आशाओं के रूप में हैं।

***अध्यक्षः** श्री सिद्धावीरप्पा; संख्या 502।

***बेगम ऐजाज रसूल** (संयुक्तप्रान्तः मुस्लिम): श्रीमान, क्या मैं आपका ध्यान इस बात की ओर आकर्षित कर सकती हूं कि इस समय सवा सात बज चुके हैं और हमें बैठे हुए सात घंटे से भी अधिक हो चुका है? अभी ऐसे वक्ता बहुत हैं जो इस महत्वपूर्ण विषय में भाग लेना चाहते हैं। अतः क्या मैं आपसे यह निवेदन कर सकती हूं कि सभा की अनुमति लेने के पश्चात् सोमवार तक के लिये आप इस वाद-विवाद को स्थगित करें और सोमवार को फिर आरम्भ करें?

***श्री आर.के. सिधवा** (मध्यप्रान्त और बरार : जनरल): जी नहीं, हममें से अधिकांश व्यक्ति इस विषय को आज ही समाप्त करना चाहते हैं।

***श्री महावीर त्यागी** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, यदि जमींदारों को पूर्ण प्रतिकर नहीं मिल सकता है, तो कम से कम उन्हें अपनी पूरी बात तो कह लेने दीजिये।

***सरदार हुकम सिंह** (पूर्वी पंजाब : सिक्ख): हां, उन्हें अपनी अन्तिम सांसें और आहें तो भर लेने दीजिये।

***श्री देशबन्धु गुप्त** (दिल्ली): श्रीमान, क्या मैं यह सुझाव कर सकता हूं कि साधारण वाद-विवाद सोमवार तक के लिये स्थगित किया जाये और संशोधन पर वाद-विवाद आज समाप्त कर दिया जाये?

***श्री एच.वी. कामतः** मेरा सुझाव है कि हम आज रात को दस बजे व्यालू के पश्चात् समवेत हों।

***अध्यक्षः** मेरा इरादा आज इस अनुच्छेद को समाप्त करने का था और इस इरादे को मैंने सभा के समक्ष कई बार प्रकट किया था और मैंने यह भी चाहा था कि भाषण देते समय वक्ता भी इस बात का विचार रखें। पर दुर्भाग्यवश जब वक्ता अपने संशोधनों पर विचार प्रकट कर रहे हैं और जब वे विषय के अन्तर्गत हैं, तो उनको रोकना मेरे लिये संभव नहीं है। इस कारण मैं उन्हें न रोक सका

[अध्यक्ष]

और जितना समय मैंने सोचा था उससे अधिक समय लग गया। अब कुछ सदस्यों ने यह सुझाव दिया है कि मैं सोमवार तक के लिये स्थगित कर दूं। इस विषय पर मैं सभा के विचार जानना चाहूंगा।

("स्थगित करो" तथा "स्थगित न करो" की पुकार)

सभा में (हाथ उठाकर) मत विभाजन हुआ।

पक्ष में : 48

विपक्ष में : 47

***श्री श्यामानंदन सहाय:** श्रीमान, कुछ भ्रम हो गया। मैंने समझा कि जो लोग इस अनुच्छेद को सोमवार को रखना चाहते हैं वे इस समय हाथ उठायें।

***अध्यक्ष:** सभा में लगभग बराबर मत हैं। 48 स्थगन के पक्ष में और 47 विपक्ष में।

***पं. हृदयनाथ कुंजरू** (संयुक्तप्रान्त : जनरल): श्रीमान, यदि मुझे इस मतदान के निर्वचन करने की आज्ञा है तो इस मतदान का अर्थ यह हुआ कि इस सभा का एक वृहदांश स्थगन चाहता हैं हमने अपेक्षाकृत बहुत ही कम महत्वों के विषयों पर बहुत अधिक समय तक वाद-विवाद किया है। आजकल हम दो सत्र कर रहे हैं। परन्तु एक बड़े ही महत्वपूर्ण अनुच्छेद के वाद-विवाद को हम बहुत शीघ्र समाप्त करने का प्रयास कर रहे हैं केवल इसलिये कि द्वितीय पठन लगभग 17 सितम्बर को समाप्त हो जाये। क्या यह इतना महत्वपूर्ण प्रयोजन है कि ऐसे वाद-विवाद पर अधिक समय देने की अपेक्षा इस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिये हम किसी भी सीमा तक चले जायें?

***अध्यक्ष:** सभा सोमवार प्रात:काल नौ बजे तक के लिये स्थगित की जाती हैं।

इसके पश्चात् सभा सोमवार ता. 12 सितम्बर, 1949 के नौ बजे तक के लिये स्थगित हो गई।